वर्ष १ अंक २
विक्रम संवत २०७५ कार्तिक
नवम्बर २०१८

आर्ष क्रान्ति

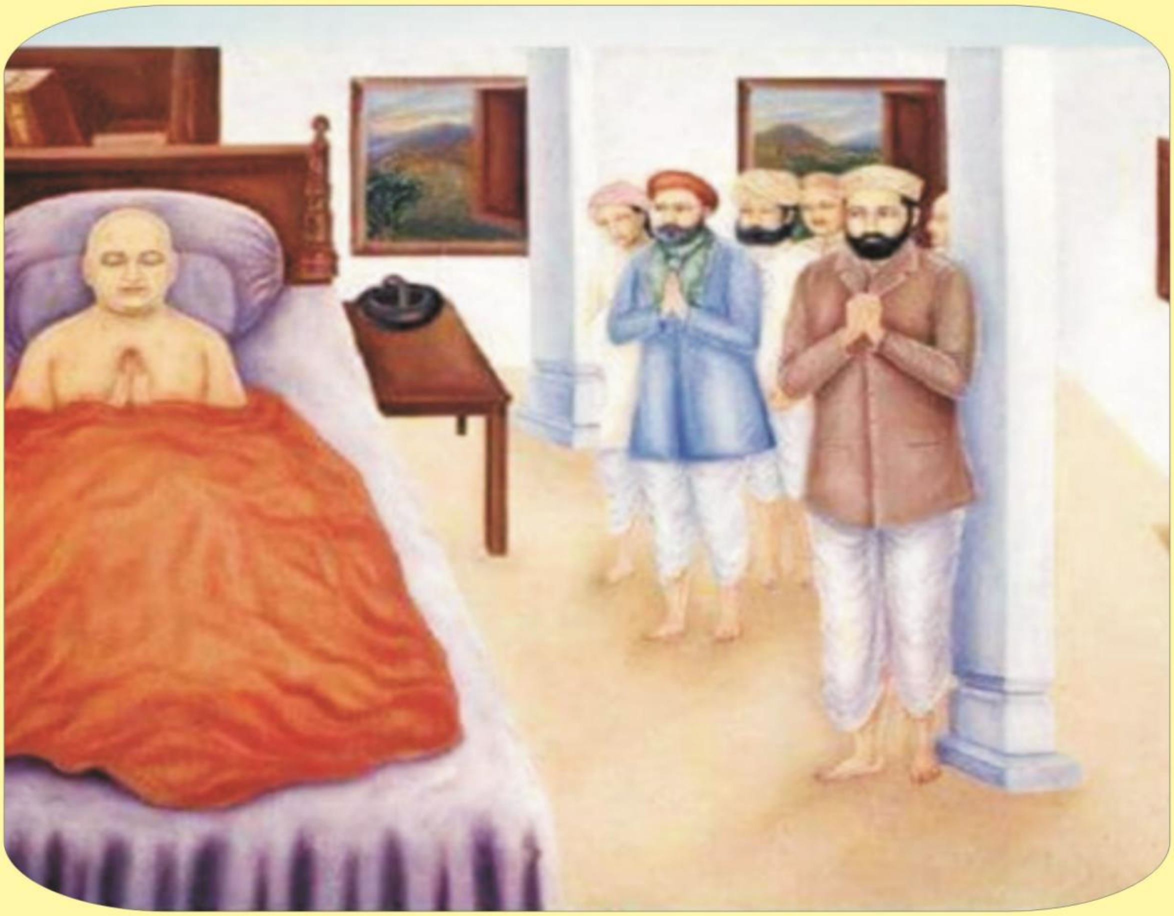

महर्षि दयानन्द के जीवन का वह अंतिम क्षण जिसने करोड़ों लोगों को प्रेरणा देने का कार्य किया

दयानंद तुमको नमन, शत-शत बारम्बार। दिखा दिया अंधियार में, क्या होता उजियार।।
दयानंद का अर्थ तो, पाखंडों पर वार। जिसने जाना मर्म यह, वह जीता संसार।।
आलोकित धरती हुई, आलोकित आकाश। दयानंद ने क्या रचा, एक सत्यार्थ प्रकाश।
मानवता कहते किसे, कहां सत्य का धाम। पल भर लेकर देखना, दयानंद का नाम।।
क्या दिखलाऊं मैं भला, दयानंद का रूप। दया; धर्म; ईमान; होगा, वह तो उजली धूप।
दयानंद की राह से, जो गुजरा एक बार। पलक झपकते हो गया, वह तो भव से पार।।
भले कहो आानंद तुम, कहो कि परमानंद । दयानंद बिन है कहां, जीवन में आनंद।

भारत भूषण आर्य

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन दिल्ली

अन्तर्राष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन
25 से 28 अक्टूबर 2018
दिल्ली
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

में आर्य लेखक परिषद् द्वारा आयोजित

दो दिवसीय विचार गोष्ठी सम्पन्न

अलग-अलग प्रान्तों से पधारे आर्य लेखकों ने लिया भाग

मंच पर उपस्थित आर्य लेखक परिषद के अधिकारी एवं आर्य लेखक व आर्य विद्वान

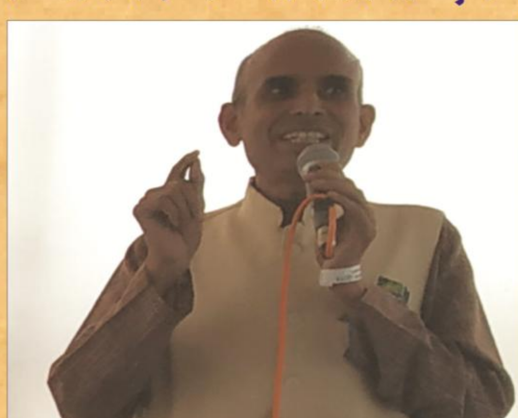

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

नवम्बर २०१८

वर्ष–१ अंक–२ कार्तिक,
विक्रम संवत् २०७५
दयानान्दाब्द– १९५
कलि संवत् – ५११९
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,११९

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७९६५७९५११३)

समन्वय सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(९९६३९७०९४०)

आकल्पन
कुलदीप कुलश्रेष्ठ (दिल्ली)
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

सम्पादकीय कार्यालय
ए–११,त्यागी विहार, नांगलोई,
दिल्ली–११००४१
चलभाष– ८१७८७१०३३४

अनुक्रम

विषय	पृष्ठ
१ विचार शक्ति (सम्पादकीय)	०४
२ सकारात्मकता को जीवन......	०६
३ हे जग के जीवन ज्योतिर्मय......	०८
४ व्यक्ति और समाज में संतुलन हो	०९
५ याज्ञिक परम्परा में महर्षि दयानन्द......	११
६ समलैङ्गिकता पर विचार	१५
७ मोक्ष नहीं मानवता ही......	१९
८ जहाँ करोड़ों बच्चे भूखे......	२१
९ परिषद समाचार	२४

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – www.aryalekhakparishad.com
फेसबुक https://www.facebook.com/आर्यलेखकपरिषद्

Digital

सम्पादकीय

विचार शक्ति

विचार चाहे अच्छा हो या बुरा, उसमें बहुत शक्ति होती है। परन्तु यदि वह किसी मस्तिष्क में ही पड़ा रहे और आचरण में न आए तो उससे कुछ भी लाभ या हानि नहीं हो सकती। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह आचरण में लाया जावे और मस्तिष्क से निकल कर अन्य मस्तिष्कों में डाला जावे। अपना विचार अन्यों के मस्तिष्क में डाल कर उसके अनुसार आचरण करने के लिए तैयार कर देना, यह एक कला है, जो सबके पास नहीं होती।

मनुष्य विचारशील प्राणी है, उसके पास विचार करने के साधन मन और बुद्धि होते हैं। विचार दो प्रकार का होता है, एक अच्छा विचार, दूसरा बुरा विचार। दोनों में से जो भी आचरण में उतर जाता है, वह व्यक्ति और समाज के जीवन–चक्र को आगे या पीछे घुमा ही देता है, उत्थान व पतन करके ही रहता है।

विश्व के इतिहास में हमें ऐसे दृश्य सरलता से देखने को मिलते हैं, जहाँ अच्छे विचार वाले लोग आचरणहीन होने के कारण बुरे विचार वाले आचरणशील लोगों से पिटते रहे, पराजित होकर पराधीनता का जीवन जीने के लिए विवश रहे। अतः जीवन साफल्य के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है कि उत्तम विचार को निष्ठा के साथ व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर तक आचरण में उतारा जाए।

मनुष्यों को विचार सदा अन्य मनुष्यों से ही मिलते हैं। जन्म से लेकर न्यूनतम 25 वर्ष तक का मनाव जीवन अन्य लोग ही बनाते हैं। वे लोग जिन विचारों के संस्कार डालते हैं, मनुष्य वैसा ही बन जाता है। अपने संपूर्ण जीवन काल में भी मनुष्य विचारों के आधार पर उठता गिरता रहता है परन्तु बहुत कम लोग जानते हैं कि उत्तम विचार मनुष्य के **सनिज** के नहीं होते। वे सृष्टिकर्ता परमेश्वर प्रदत्त होते हैं। बुरे विचार मनुष्य की अपनी मानव सुलभ दुर्बलताओं और स्वार्थ पर आधारित होते हैं, जिन्हें अनेक लोग ईश्वरीय विचार कह कर भी प्रचारित करते हैं।

उत्तम विचार, ईश्वरीय विचार मनुष्यों को गंतव्य की ओर ही अग्रसर करते हैं। उन्हें आचरण में लाकर लोग उन्नति ही करते हैं। बुरे विचार मनुष्य के पतन का ही कारण बनते हैं, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

ईश्वरीय विचार को ग्रहण करके निजी आचरण में उतार करके अन्य मनुष्यों के मस्तिष्क में संक्रमित करके आचरण में उतार देने की क्षमता और कला जिनमें होती है, उन्हें ऋषि कहा जाता है। ऋषि परमेश्वर प्रदत्त विचारों के प्रतिनिधि होते हैं। उनके द्वारा प्रदत्त विचार आर्ष विचार कहलाते हैं। 'आर्ष क्रान्ति' उन्हीं का प्रतिनिधित्व करती है। यह ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त अपनाए गए उन विचारों की प्रचारक–प्रसारक है जिन्हें आचरण में उतार कर व्यक्ति और समाज गन्तव्य तक जाकर सफलता प्राप्त कर लेते हैं। उक्त ऋषि लोग परार्थ घटक, निष्क्रिय और निस्वार्थ होते हैं जिनके लिए भर्तृहरि ने कहा है –

एके ते पुरुषा परार्थ घटका स्वार्थं विनिघ्नन्तिये

और महर्षि दयानन्द ने कहा –

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहित मान मालापहाराः।
संसार दुःख दलनेन सु भूषिता ये,
धन्या नरा ते विहित कर्म परोपकाराः।।

राष्ट्रकवि दिनकर के शब्दों में –

अशन–वसन से हीन, दीनता में जीवन धरने वाले,
सहकर भी अपमान मनुजता की चिंता करने वाले।
कवि, कोविद, विज्ञान–विशारद,कलाकार, पण्डित, ज्ञानी,
कनक नहीं, कल्पना और उज्ज्वल चरित्र के अभिमानी।।

वेद में इनके लिए कहा गया है –

भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपोदीक्षामुनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातम् तदस्मैदेवा उपसंनमन्तु।।

ऋषि लोग संसार के लोगों की निर्भयता, सुख और कल्याण की कामना से ही श्रम और समय का उपयोग

करते हैं। ऐसा ही एक दिव्य पुरुष ईसा की 19वीं सदी में उत्पन्न हुआ, जिसका नाम है **स्वामी दयानन्द सरस्वती। आर्ष क्रान्ति** उसके विचारों पर आधारित एक समग्र क्रान्ति की उद्वाहक है । यह विश्व के ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग और भोग मार्ग में धंसे जीवन चक्रों की अवरुद्धता के कारण का निवारण का उपाय बताती है। मानव जीवन की सफलता का रहस्य उद्घाटित करती है। एक स्वस्थ विश्व समाज का निर्माण करने के लिए मनुष्य मात्र का आह्वान करती है। संसार का उपकार अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और समाज का आधार कोई ना कोई विचार होता है। इसी आधार पर किसी समाज की शिक्षा प्रणाली और कर्मकांड की संरचना की जाती है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत के क्रियाकलाप निर्धारित किए जाते हैं। परन्तु आवश्यक उचित शिक्षा और संस्कार के अभाव में अथवा स्वार्थवश विचार भेद उत्पन्न हो जाते हैं और समाज टूट–टूट कर बिखरने लगता है। वह वर्गों और उपवर्गों में बँटता हुआ पारस्परिक कलह, ऊँच–नीच, छूतछात और ईर्ष्या–द्वेष की भावनाओं से भरपूर हो जाता है। विचारों के इस दलदल में मनुष्य लोग डूबते–उभरते हुए जीवन का सुख–चैन गँवा कर परस्पर शत्रु बन कर एक दूसरे का शोषण और विनाश करने में प्रवृत्त हो जाते हैं।

महर्षि दयानन्द के आने से पहले कहीं भी कोई समाज नहीं था और अब तक भी समाज नहीं बना सका। बिना एक स्वस्थ समाज के मनुष्यों का जीवन सफल नहीं हो सकता, सुख शांति का वातावरण उत्पन्न नहीं हो सकता। अतः महर्षि दयानन्द ने एक स्वस्थ विश्व समाज बनाने की प्रेरणा दी और कार्यरूप में परिणित करते हुए उसकी आधार शिला रखकर समाज की स्थापना की। उसका नाम रखा **आर्य समाज**। वह कुछ समय तक स्वस्थ और सक्रिय रहा और अच्छी ख्याति अर्जित की। संसार के लोग उसकी ओर आशा भरी दृष्टि से ताक रहे थे। परन्तु कालांतर में उसमें भी विचार भेद, आचरण शैथिल्य उत्पन्न हो गया और वह एक सड़े हुए दल–दल में परिवर्तित हो चुका है। उसमें सामाजिकता का कोई लक्षण शेष नहीं रहा अतः वह सामाजिकता का फल कैसे प्रदान कर सकता है ?

कुछ गृद्ध वृत्ति के लोग उसकी देह को नोंच–नोंच कर खाने में लगे हैं और कुछ उस की दयनीय दशा पर रोदन करने में लगे हुए हैं। किसी शायर ने कहा है–

रो रहे हैं यार मेरी लाश पर बेअख्तियार ।
ये नहीं दर्याफ्त करते किसने इसकी जान ली।।

महर्षि दयानन्द का कहना था कि केवल वैदिक विचार पर ही एक स्वस्थ समाज बन सकता है, बशर्ते उसे शिक्षा और संस्कार द्वारा मानवों के आचरण में दृढ़ता पूर्वक प्रतिष्ठित कर दिया जावे। हम ऐसे लोगों के साथ स्वस्थ समाज बनाने की इच्छा रखते हैं।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

–वेदप्रिय शास्त्री

राष्ट्रभक्त दयानन्द

एक बार महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के एक भक्त ने बडी श्रद्धा और प्रेम से महर्षि को चाकू से सेव काटकर दिया। चाकू राजर्स का था। महर्षि की दृष्टि उस पर पड़ गई, बोले – 'चाकू तो सुन्दर है, कितने का है ?' भक्त ने गर्व से कहा –'महाराज! यह विलायती राजर्स का चाकू है, इसका मूल्य सवा रुपया है।' महर्षि ने पूछा – 'क्या यहाँ भी चाकू बनते हैं ?' भक्त ने कहाँ – 'हाँ महाराज!' महर्षि ने पुनः पूछा – 'कितने का मिल जाता है ?' 'उत्तर आया – 'छः पैसे में।' प्रश्न –'क्या वह चाकू सेव काट सकता है और इसी प्रकार के अन्य काम कर सकता है ?' उत्तर आया – 'हाँ महाराज।'

तब देशभक्त ऋषि दयानन्द ने कुछ क्रुद्ध होकर घृणात्मक मुद्रा में कहना प्रारम्भ किया – 'जब अपने देश का बना छः पैसे का चाकू यही काम कर सकता है तो तुमने सवा रुपये का विदेशी चाकू मोल लेकर क्यों अपने देश का धन नष्ट किया ?'

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्तु। (ऋग १.१००.१६) – विश्वनियन्ता इन्द्र सदा हमारा ज्ञानदाता उपदेशक होवे।

सकारात्मकता को जीवन का आधार बनाएं

– अखिलेश आर्येन्दु

एक अत्यंत निर्धन परिवार में जन्म लेने वाला लड़का लोगों की अच्छाइयाँ, लोगों के अनुभव, लोगों के अच्छे विचार और लोगों के अच्छे कार्य की सफलता को देखता और बहुत खुश होता। वह अच्छाइयों को ग्रहण करता और उसे जीवन में उतारने का संकल्प करता। अनुभव से सीख लेकर ज्ञान में बढ़ोत्तरी कर लेता। अच्छे कार्यों के सफल होने का रहस्य पता लगाता और उसे समझने का प्रयत्न करता। वह धीरे–धीरे इतना सद्गुणी, अनुभवी और ज्ञानी बन गया कि निर्धनता के कारण जो लोग उसे महत्त्व नहीं देते थे वही उसे अपना प्रेरणास्रोत मानने लगे। वह मार्गदर्शक नहीं था, लेकिन उससे लोग मार्गदर्शन देने के लिए प्रार्थना करने लगे। उसने अपनी शक्ति, समय, योग्यता और भावों को ठीक तरह से पहचाना था। समय ने उसे पूज्य बना दिया। समय को उसने महत्व दिया, समय ने उसका महत्त्व बढ़ा दिया।

किसी भी स्थान पर रहें, वहाँ अच्छाइयों, सुन्दरताओं और शुभताओं को देखने की आदत डालिए। संसार की हर वस्तु या प्राणी में कोई न कोई अच्छे और सकारात्मक तत्त्व होते ही हैं। कोई भी अच्छाई या सकारात्मकता आपके काम आ सकती है। आपकी खोज जितनी अच्छाई की ओर बढ़ती जाएगी आपका हृदय, मन और चेतना पवित्र और विशाल बनते जाएँगे। एक आनंद और आह्लाद आप में स्फुरित होता जाएगा। आपके लिए कोई वस्तु नफरत या ईर्ष्या की वस्तु व विषय न बनकर प्रेम और आनंद का विषय बन जाएँगी।

सबेरे का सूर्य किसी के लिए प्रेरणा और ज्ञान का स्रोत है तो किसी चमगादड़ के लिए मुसीबत। उसे (चमगादड़ के लिए) तो अँधेरी रात ही पसंद है। चन्द्रमा का शीतल प्रकाश सुहागिन के लिए आनंद का स्रोत है तो विरहणी के लिए ईर्ष्या की वस्तु। वैज्ञानिक सूर्य के प्रकाश से सौर ऊर्जा का संचय करते हैं तो कृषक खेती के लिए वरदान मानते हैं और रोजाना सूर्य निकलने का इंतज़ार करते हैं। कृषि को जीवन सूर्य से ही मिलता है। लेकिन जून की दोपहरी के सुनसान में राहगीर के लिए तो यही सूर्य मुसीबत बन जाता है। यदि उसी सूर्य को सकारात्मक ढंग से सभी देखने लगें, तो सबके लिए वह फलदायी हो सकता है।

कीचड़ किसी जीव के लिए समस्या है तो कमल के लिए जीवनदाता। कीचड़ में पड़े सोने को निकालकर स्वर्णकार गहने बनाकर उसे मूल्यवान बनाने के काम में ले लेता है। पिता ने बेटे से कहा–बेटा, ''यदि तुम सफल होना चाहते हो तो खूब मेहनत करो। किसी के साथ विश्वासघात न करना और जीवन को संतुलित ढंग से व्यतीत करना।'' पिता में कई ऐसी खामियां थी जो पुत्र को पसंद नहीं थीं। बेटे ने कहा– ''पिताजी! आप जिन अच्छाइयों को ग्रहण करने के लिए मुझे कह रहे हैं यदि आप करते होते तो आज परिवार की स्थिति कितनी अच्छी होती। पिता ने कहा, ''बेटा! मैंने तुम्हें जिन अच्छाइयों पर चलने के लिए कहा है, उन्हें मैं जीवन में अपना नहीं सका। लेकिन मैं नहीं चाहता कि मेरी तरह तुम भी बुराइयों में पड़े रहकर जीवन को दुखमय बना दो।'' पुत्र को पिता की बात समझ में आ गई। उसने समझ लिया कि यदि वह अच्छाइयों को अपनाएगा तो अच्छा बनेगा और समाज में उसकी ही नहीं परिवार की इज़्जत बढ़ जाएगी। उसने रोजाना एक अच्छा काम, एक अच्छी बात और एक अच्छा गुण अपनाने का संकल्प किया। कुछ ही दिन में वह एक महान् सदगुणी मानव बन गया।

रोज़ाना एक अच्छाई ग्रहण करने और एक बुराई छोड़ने का संकल्प करिए। कुछ ही दिन में आप देखेंगे जीवन में चारों ओर सकारात्मकता का सूर्य उदय हो गया है, जो स्वयं को ही नहीं समाज को भी अपने उज्ज्वल प्रकाश से प्रकाशित कर रहा है। दुर्गुणी लोग भी प्रेरणा लेने लगें हैं और अच्छा इंसान बनने के लिए प्रेरित हो रहे हैं। जीवन का स्वयं निर्मित आदर्श, अपना बनाया हुआ उत्तम व मौलिक मार्ग और उत्तम विचार स्वयं को ही शिखर पर नहीं पहुँचाते हैं अपितु समाज के लिए भी प्रेरणास्रोत बनते हैं।

जिस तरह से वैज्ञानिक और समाज सुधारक हर समय नई–नई खोजों के द्वारा मानवता को अपना

अमूल्य अवदान समर्पित करते रहते हैं उसी तरह से यदि समय, धन और शक्ति का उपयोग करके अच्छाइयों की खोज में लग जाएँ तो जीवन अच्छाइयों का पुस्तकालय बन जाएगा। रोजाना रोने धोने वाला, प्रत्येक बात और कार्य में दोष निकालने वाला व्यक्ति कभी उन्नति के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ सकता है और लोगों की नज़र में वह कभी अच्छा भी नहीं बन पाता। जाहिरतौर पर सत्य, विनम्र और हितकारी वचन बोलने वाले व्यक्तियों को वे भी पसंद करते हैं जो झूठ और कपटी होते हैं। झूठ और कपट से कोई व्यक्ति समग्रता में विकास नहीं कर सकता। कुछ दिन भले ही वह समाज की दृष्टि में 'बड़ा आदमी' बना रहे, लेकिन जैसे ही समाज को उसकी सच्चाई मालूम होती हैं, लोग उससे दूरी बनाने लगते हैं।

ऐसे बहुत से लोग मिल जाएँगे जो गप्प, झूठ, फ़रेब और मिठास के लबादा ओढ़कर लोगों से वाहवाही लूटते रहते हैं। लेकिन, यह वाहवाही बहुत दिनों तक टिकाऊ नहीं होती है। कम बोलना, अच्छा बोलना, सच बोलना, सर्वहितकारी बोलना और विनम्रता के साथ बोलना तो ठीक है साथ में उसे कार्य–व्यवहार में लाना, उससे भी अच्छा होता है।

कुछ युवकों ने संकल्प लिया कि वह अपना समय केवल दूसरों की मदद करने में लगाएँगे। उसी मुहल्ले के कुछ युवकों ने उनका उपहास करना शुरू कर दिया। उपहास करने वाले ये लड़के किसी की खामियों को ढूढ़ने और लोगों में उसे प्रचारित करने में ही अपना समय ज़ाया करते थे। संकल्प के साथ परोपकार कार्यों में जीवन लगाने वाले लड़कों ने उनकी उपेक्षा की। धीरे–धीरे दोष निकालने वाले लड़कों को समझ में आ गया कि उनके अच्छे कार्य और शुभ संकल्प के आगे उनकी नहीं चलने वाली है। मुहल्ले में सद्गुणी लड़कों को लोग सराहते और उन्हें अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित करते। नकारात्मक प्रवृति के लड़के जब असफल होने लगे और घर में उनका सम्मान घटने लगा, तो वे भी अच्छाइयों की ओर चलना शुरू कर दिये। यह होता है, अच्छाइयों पर धैर्य पूर्वक चलते रहने का परिणाम।

अच्छाइयों में ही शक्ति है। यह शक्ति जीवन को शिखर पर ले जाने में आधार प्रदान करती है। जैसे मधुमक्खी फूलों का पराग चूसकर मीठा शहद इक्ट्ठा कर लेती है उसी तरह से अच्छाई रूपी पराग जहाँ से भी मिले, उसे ग्रहण करने में कभी हिचकिचाना नहीं चाहिए। समुद्र खारा होते हुए भी बरसात की मीठी बूँदों को अपने अन्दर समाहित कर लेता है। छोटे से छोटे व्यक्ति, वस्तु, किताब और उपदेश, जिसमें भी अच्छाई दिखे बिना देरी किए ग्रहण कर लेना चाहिए। हो सकता है, उन अच्छाइयों में कुछ बुराई भी मिली हो। जैसे सोने को शोधित करके, संस्कारित करके स्वर्णकार उसे शुद्ध सोना, जिससे आभूषण बन सके, बना लेता है और उसकी गंदगी निकाल देता है। ऐसी ही दृष्टि अच्छाई ग्रहण करते समय रखनी चाहिए।

अपने अवचेतन में यह बात बिठा लीजिए कि जीवन सकारात्मक, शुभ, श्रेष्ठ और आनंद जैसे दैवीय तत्त्वों को अर्जित करने के लिए मिला है इसे हम निश्चित ही अर्जित करके रहेंगे। अपने अन्दर उन वस्तुओं, विचारों और विषयों को कभी जगह मत दीजिए जो नकारात्मकता को बढ़ाने वाली हों। हिंसा, नफरत, द्वेष, क्रोध, विश्वासघात, निहित स्वार्थ, बदला लेने की प्रवृत्ति, अन्याय, असत्य और ऐसी ही नकारात्मक भावों को जन्म देने वाले शब्दों को कभी अपने अन्दर जगह न दीजिए। अपने कर्तव्य और कार्य को अच्छी प्रकार से करने की आदत डालिए। जहाँ भी, जिसमें भी, अच्छाई दिखे उसकी प्रशंसा कीजिए और उसे अपने अन्दर समाहित कर लीजिए। कोई विचार, कार्य, विषय 'नहीं' से नहीं बल्कि 'हां' से प्रारम्भ कीजिए। अच्छा सुनने, अच्छा बोलने और अच्छा करने की आदत डालिए। खुलकर विचार करिए और खुलकर अपनी बात कहिए। संकोच या झिझक खत्म कर दीजिए। यह सोचिए, हमारा मन हमारे आधीन है। हम मन के आधीन नहीं। इसलिए संशय पालने की आवश्यकता नहीं। जहाँ भी संशय होगा वहाँ कार्य पूरा नहीं हो सकता।

आशा, विश्वास और आनंद अपने अन्दर हमेशा बसाए रखिए। यह आंतरिक ऊर्जा का सबसे बड़ा स्रोत है। किसी चीज़ को अपनी धारणा, मान्यता या परम्परा से उपेक्षित न करके उसकी उपयोगिता, उसकी सात्विकता और तात्विकता पर विचार करके ही उसे अपनाने या न अपनाने का निर्णय लेना बेहतर होता है। उन लोगों, वस्तुओं और विषयों से हमेशा दूरी बनाएँ रखिए, जो नकारात्मक भावों, विचारों और आंतरिक वातावरण को दूषित करते हैं।

सकारात्मक, शुभ, शांतिदायक और संतोषप्रद व्यक्तियों और वस्तुओं के साथ मैत्री बनाना अच्छा रहता है। शरीर, मन और आत्मा में अपवित्रता, अशुभता और अशांति से रोग बढ़ते हैं। इससे दुर्बलता आती है। अच्छा यह हो कि जिनसे दुर्बलता आए, उनसे ज़ल्द से ज़ल्द छुटकारा ले लीजिए। संसार में दुर्बल व्यक्ति, वस्तु या विषय का सम्मान कभी नहीं होता। स्वयं को इतना सबल बनाइए कि आपके प्रत्येक कार्य, लक्ष्य और विचार में कोई–न–कोई अच्छी चीज, गुण या भाव मिल जाए। **(लेखक चिंतक, संस्कृतिवेत्ता और साहित्यकार हैं)**

प्रार्थना

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।

– ऋग्वेद० ०१।०२।०७।१६

व्याख्यान – हे जीवो !'विष्णोः'व्यापकेश्वर के दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो । (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जाने की व्यापक विष्णु के कर्म हैं ? (उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्य भाषणादि व्रत ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी हो के समर्थ हुए हैं। यह काम उसी के सामर्थ्य से है। क्योंकि 'इन्द्रस्य, युज्यः, सखा' इन्द्रियों के साथ वर्तमान कर्मों का कर्ता, भोक्ता जो जीव है इसका वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है, उससे परे जीवों का हितकारी कोई और नहीं हो सकता। इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये।

विनय

हे जग के जीवन ज्योतिर्मय।
तमसावृत हृत्कोष्ठ हमारा, हो नव प्रकाशमय।।

ज्ञान ज्योत्सना जले जगत् में जाग्रति जीवन छलके।
मलिन मूढ़ मृत सी मानवता का मुख उज्ज्वल झलके।
पथ पुनीत पा कर प्रशस्त प्रिय पथिक बढ़े निर्भय ।।१।।

दुरितों के दुर्गम्य दुर्ग की, दीवारें द्रुत टूटें।
प्रीति प्यार से **पारतन्त्र्य** के पाश परस्पर छूटें।।
धरा धाम धन धवल कीर्ति शुचि सदा रहे अक्षय ।।२।।

अर्धप्रफुल्लित अगणित कलिका विकसित जीवन पाएँ
सुखद संकलित शुभ स्वप्नों को सब साकार बनाएँ
सकल सुजन संगठित शीघ्र हो, करे भद्र निश्चय ।।३।।

कृश काया का कल्प कर सकें, करुणा कोर करो अब ।
पृथ्वी के पीड़ित प्रांगण का पाप प्रमाद हरो अब।
विश्व **'वेदप्रिय'** बने, हमारी होवे सदा विजय ।। ४ ।।

हे जग के जीवन ज्योतिर्मय।
तमसावृत हृत्कोष्ठ हमारा, हो नव प्रकाशमय।।

– वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाड़ी, केलवाड़ा
राजस्थान

व्यक्ति और समाज में संतुलन हो

– डॉ रूपचन्द्र 'दीपक'
लखनऊ (उ.प्र.)

निर्माण, विकास और परिपक्वता की दो दिशायें हैं – ऊर्ध्व अर्थात नीचे से ऊपर और क्षैतिज अर्थात वाम से दक्षिण। समाज में दो सत्तायें हैं – व्यक्ति और समाज। व्यक्ति इकाई है। इसका विकास ऊर्ध्व दिशा में सम्पूर्ण होना चाहिए। व्यक्तियों का बृहत्तम समूह 'समाज' है। इसका विकास चारों दिशाओं में सम्पूर्ण होना चाहिए। ये दोनों विकास एक साथ हों, बीच में रिक्तता न हों और दोनों एक दूसरे के पूरक हों, तब आदर्श स्थिति होगी। मानव 'सम्पूर्ण मानव' होगा और समाज 'सम्पूर्ण समाज' होगा। उस समय हम कहेंगे– 'स्काई इज द लिमिट'।

प्राचीन भारत 'आदर्श समाज' था। उस समय दोनों विकास साथ–साथ थे, बीच में रिक्तता न थी और दोनों एक–दूसरे के पूरक थे। इस 'आदर्श' की प्राप्ति के लिए हमारे आप्त ऋषियों ने दो व्यवस्थायें विकसित की थीं। इनमें से एक का नाम था –'आश्रम व्यवस्था'। यह किसी व्यक्ति का 'ऑप्टिमम' अर्थात् यथासम्भव महत्तम अर्थात् सम्पूर्ण विकास करती थी। कोई व्यक्ति वेदज्ञ, कोई वैयाकरण, कोइे दर्शनविद, कोई ज्योतिषाचार्य, कोइे न्यायविद् कोई राजनीतिज्ञ, कोई संगीतज्ञ, कोई वैद्यक विद्याविशारद और कोई समाधिवान होता था।

पृथक्–पृथक् व्यक्ति धनुर्विद्या, मल्लविद्या, नौविद्या, व्यापारविद्या, पशुपालन, अश्वविद्या, पक्षीविज्ञान, यज्ञविद्या, पाकविद्या, योगविद्या आदि में पारंगत होते थे। आज भी पृथक्–पृथक् विद्याओं में पारंगत लोग विद्यमान हैं। परन्तु निर्दोष लोग कम हैं। राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित वैयाकरणों में वर्णोच्चारण का दोष पाया जाता है। चिकित्सकों में धन का लोभ पाया जाता है। आरक्षिकों में अपराधियों से साठ–गाँठ करने का दोष व्याप्त है। व्यापारियों में मिलावट का दोष और राजनीतिज्ञों में राष्ट्रद्रोह का दोष देखा जाता है।

वेदों के आधार पर बनी आश्रम–व्यवस्था एक सीढ़ी के समान थी। यह सीढ़ी चार दण्डों वाली है और नीचे से ऊपर की ओर जाती है। सब जानते हैं कि ये चार दण्ड' ब्रह्मचर्य – गृहस्थ – वानप्रस्थ – संन्यास हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम का उद्देश्य है आत्म–संयम रखते हुए आत्म–ज्ञान प्राप्त करना। व्याकरण, गणित, वैद्यक एवं कुछ वेदविद्या सीखना; और अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार सम्पूर्ण वेदविद्या एवं विशिष्ट विद्यायें प्राप्त करना। ब्रह्मचर्य का पालन जीवन–भर मनुष्य के चरित्र की रक्षा करता है, विकट परिस्थितियों में पतन से बचाता है और राष्ट्र को उत्तम नागरिक प्रदान करता है। ऐसे नागरिक भविष्य में भी मिलावट अथवा साठ–गाँठ नहीं करते।

गृहस्थाश्रम से तात्पर्य है – गुण–कर्म–स्वभाव के अनुसार लड़के–लड़की का विवाह होना। यह विवाह न तो आकर्षण मात्र से हो और न ही बड़ों के आदेश मात्र से। आकर्षण हटने अथवा आदेश शिथिल होने पर विवाह विच्छेद की आशंका उत्पन्न हो जाती है। विवाह विच्छेदन एक समाधान माना जाता है किन्तु यह समाधान कम और समस्या अधिक है, विशेषकर बच्चों के लिए। अतः लड़के–लड़की की इच्छा और विद्वान स्त्री–पुरुषों की सहमति से विवाह होना चाहिए जो जीवन–भर दृढ रहे। गृहस्थ व्यक्ति धनोपार्जन के लिए अपने स्वभाव एवं विशेषज्ञता का क्षेत्र चुनें। किसी व्यक्ति का स्वभाव विद्याप्रिय, किसी का सत्ताप्रिय, किसी का अर्थप्रिय और किसी का सहयोगप्रिय होता है। उसे तदनुरूप व्यवसाय अपनाना चाहिए। आदर्श भारत में चिकित्सक निःशुल्क उपचार करते थे। आरक्षित–जन अपनी जान पर खेलकर कर्तव्य निभाते थे। सहयोगी जन निष्ठापूर्वक सेवा कर के पारिश्रमिक लेते थे। सबके व्यवसाय भिन्न–भिन्न किन्तु वैयक्तिक जीवन निर्दोष होते थे। आज हम भूतकाल और वर्तमान काल का सम्यक् चिन्तन करें तो पुनः ऐसा हो सकता है।

वन कटते जाने से आज वानप्रस्थ आश्रम संकटग्रस्त है। आश्रम अवश्य बने हैं और उनमें हजारों वानप्रस्थी रह रहे हैं। वस्तुतः द्विज कोटि के सभी व्यक्तियों को वानप्रस्थ तक पहुँचना चाहिए। इससे घर भी सुधरेंगे और वानप्रस्थ–संन्यासाश्रम भी। व्यक्ति के उच्चतम विकास में वानप्रस्थ की महत्वपूर्ण भूमिका है। संन्यास

आश्रम के सम्बंध में ऋषि दयानंद कहते हैं – ''जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है, क्योंकि इसके बिना विद्या, धर्म कभी नहीं बढ़ सकता'' (सत्यार्थप्रकाश समुल्लास–5,प्रस्तर–22)। ब्रह्मचर्य से संन्यास, ब्रह्मचर्य –गृहस्थ से संन्यास अथवा ब्रह्मचर्य–गृहस्थ–वानप्रस्थ से संन्यास लेकर आर्य जनों का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वे पूर्ण विद्वान् होकर संन्यासी भी बनें। इससे व्यक्ति– निर्माण अपने परम बिंदु तक पहुँचेगा।

आचमन मंत्रों में सत्य, यश और श्री, इन तीनों पदार्थों की कामना की गई है। ये क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अभीष्ट पदार्थ माने जा सकते हैं। प्लेटो ने समाज को तीन वर्गों में विभाजित किया है– किंग–फिलॉस्फर्स, वारियर्स और प्लैजर–सीकर्स। इन्हें हम क्रमशः विद्वत–वर्ग, योद्धा–वर्ग और व्यापारी–वर्ग कह सकते हैं। मंत्र में सत्य–यश–श्री से जो लोग शेष बच गए हैं और प्लेटो के तीन वर्गों से जो लोग शेष बच गए हैं, उन्हें भी सम्मिलित करते हुए वैदिक ऋषियों ने चौथा वर्ण बनाया है। जिस प्रकार व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास हेतु आश्रम–व्यवस्था है, उसी प्रकार समाज के सम्पूर्ण विकास हेतु वर्ण व्यवस्था है। इसमें जन्म के आधार पर कोई विभाजन नहीं किया गया है। जन्म के आधार पर किया गया विभाजन बुद्धि–सम्मत कहा भी नहीं जा सकता। सब व्यक्तियों को समान स्वभाव वाला मानना मनोवैज्ञानिक त्रुटि होगी अतः प्रवृत्ति, स्वभाव एवं व्यवसाय के आधार पर चार वर्ण गठित किए गये– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

ब्राह्मण का अर्थ है– परब्रहन अर्थात् ईश्वर का उपासक और शब्दब्रहन अर्थात् वेद का विद्वान। यह बुद्धि, विद्या, सत्य एवं धर्म में श्रेष्ठ होकर भी पारिश्रमिक नहीं लेता और और जीवन–भर निःशुल्क पढाता तथा औषधि देता है। सर्वाधिक सम्मानित होकर भी अपमान में रुष्ट नहीं होता। यह व्यक्ति एवं समाज के निर्माण की प्रथम ईंट हैं जो अब नष्ट–भ्रष्ट हो गई है। पाँच हजार वर्ष पहले ईसा से हमारा पतन प्रारम्भ हुआ और स्वप्न की बात सत्य मानी जाए तो अब इसी की प्रतिष्ठा से उत्थान प्रारम्भ होगा।

क्षत्रिय का कर्तव्य है प्राण देकर भी मातृभूमि और स्वदेशी जनों की रक्षा करना। यह विशेष प्रशिक्षण का कार्य है और सभ्य समाजों में एक विशेष वर्ग इसका चयन करता है, जैसे कि वर्तमान राष्ट्रों की सेना होती है। आदिम कोटि के मानव–समूहों में सभी लोग मार–काट युद्ध करते आए हैं। भारत के सुसभ्य समाज में वर्तमान की भाँति विशेष वर्ग आत्म–बलिदान करता आया है। इसी प्रकार वैश्य वर्ग कृषि, पशु–पालन एवं व्यापार द्वारा समाज को समृद्ध करता आया है। उसे ब्राह्मण से निःशुल्क परामर्श, क्षत्रिय से सदा सुरक्षा और शुद्र वर्ण से उचित दर पर सहयोग मिलता आया है। फिर क्यों न भारत 'सोने की चिड़िया' कहलाए ?

शुद्र वर्ण 'आर्य' समाज के अंतर्गत है। विगत शताब्दियों में यह शोषण का शिकार हुआ। वर्तमान में कहीं उपेक्षित हो रहा और प्रतिशोध में व्यस्त है। इस वर्ग को समाज–निर्माण की खातिर मनुस्मृति की मूल शिक्षाओं को समझने हेतु समय निकालना होगा। तभी भारत की प्रगति के रथ को कीचड़ से निकालना सम्भव होगा। ये चार वर्ण आवश्यक और परस्पर पूरक हैं। उथले मस्तिष्क के लोगों ने इन्हें मिटाकर एक करने के प्रयास में चार हजार वर्ग –उपवर्ग बना लिये हैं। अब भारतवर्ष में पुनः वैदिक चिन्तन बढ़ रहा है। अतः आश्रम–व्यवस्था और वर्ण–व्यवस्था का पालन हो, व्यक्ति और समाज में सन्तुलन स्थापित हो और ऊर्ध्व–क्षैतिज निर्माण द्वारा 'अतुल्य भारत' का आविर्भाव हो।

आर्ष ग्रंथों का पढ़ना ऐसा है कि जैसे एक गोता लगाना और बहुमूल्य मोतियों का पाना और इसके विपरीत अनार्ष ग्रन्थों को पढ़ना ऐसा ही है जैसे पहाड़ का खोदना और कौड़ियों का लाभ होना।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती
(सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास)

महर्षि दयानन्द महाप्रयाण पर

याज्ञिक परम्परा में महर्षि दयानन्द का अप्रतिम योगदान

- डा0 कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री, देहरादून

उवट, महीधर और सायणाचार्य आदि भाष्यकारों का विचार था कि वेद में वर्णित अग्नि, इन्द्र, वरुण, मित्र आदि कल्पित स्वर्ग में रहने वाले देवता हैं। ये देवता पृथ्वी पर दिखाई देने वाले अग्नि, वायु और जलादि पदार्थों का और आकाश में दिखाई देने वाले सूर्य, चन्द्रमा और उषा आदि के अधिष्ठात्री देवता माने जाते हैं। इस प्रकार से इन देवताओं के दो प्रकार के स्वरूप हो जाते हैं। एक स्वरूप अग्नि, जल, वायु आदि के रूप में जड़ पदार्थ के रूप में रहता है और दूसरा स्वरूप अधिष्ठात्री देवता के रूप में मनुष्यों की भांति प्राणधारी व चेतनायुक्त शरीर के रूप में रहता है। उपरोक्त भाष्यकारों के विचार से इन अधिष्ठात्री देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञों में इनसे सम्बन्धित मंत्रों की आहुतियां दी जाती हैं। यह माना जात है कि ये देवता अदृश्य रूप धारण करके यज्ञ में उपस्थित होकर इन पदार्थों का भक्षण करते हैं। वेदमंत्रों के रूप में अपनी स्तुतियों को सुन कर ये प्रसन्न हो जाते हैं और यजमान की उस कामना जिसके लिए यज्ञ किया गया है, पूर्ण करते हैं। यह भी माना जाता था कि इन यज्ञ–याग करने वालों को मरणोपरान्त स्वर्ग में भी भेज देते थे। स्वर्ग में इन्हें देवताओं की भांति ही सुखभोग प्राप्त होते थे।

महर्षि दयानन्द के अनुसार यज्ञों का वास्तविक स्वरूप–

महर्षि ने आर्योद्देश्यरत्नमाला में यज्ञ की परिभाषा इस प्रकार की है– 'जो अग्निहोत्र से लेके अश्वेमधपर्यन्त, वा जो शिल्पव्यवहार और पदार्थ विज्ञान है, जो कि जगत् के उपकार के लिए किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं।

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित मान्यता–

(१) देवताओं को आहूत करने पर वे आकर हवि का भक्षण नहीं करते हैं–

महर्षि दयानन्द को अधिष्ठात्री देवों की सत्ता स्वीकार्य न थी। उनके द्वारा तत्कालीन यज्ञ परम्परा का घोर विरोध किया गया। अपने वेदभाष्य व सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने देवतावाची पदों का सही अर्थ प्रस्तुत किया। सप्तम समुल्लास में देवता की परिभाषा देते हुए महर्षि कहते हैं–**'देवता'** दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं, जैसी कि पृथिवी। परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। महर्षि ने अपने वेदभाष्य में अग्नि, वायु आदि मंत्रों के देवतावाची पदों का अर्थ स्वर्ग विशेष में रहने वाले और मनुष्य आकृति के किसी प्राणी के रूप में नहीं किया है अपितु प्रकरण के अनुसार मंत्रों में प्रयुक्त विशेषण के आधार पर जगत् सृष्टा परमात्मा, राष्ट्र का शासक, राज्य कर्मचारी, अध्यापक, उपदेशक, और जगत् में प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले अग्नि, वायु, जल, आकाश आदि जड़ पदार्थों के रूप में किया है। चारों वेदों का अध्ययन करने पर कहीं पर भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है कि अग्नि, वायु, जल, आदि जड़ पदार्थों के मनुष्य जैसे शरीरधारी चेतन अधिष्ठात्री देवता भी पाये गये हों। इस प्रकार पारम्परिक यज्ञकर्त्ताओं की यह धारणा कि यज्ञों में मंत्रों के द्वारा देवताओं को आहूत करने पर वे आकर हवि का भक्षण करते हैं और इस कृत्य से प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता का कल्याण करते हैं, वेद के प्रतिकूल है। महर्षि ने अपने वेदभाष्य से यह सिद्ध कर दिया कि वेद में वर्णित देवताओं का वह स्वरूप नहीं है जो मध्यकाल के विनियोगकारों और सायणाचार्य आदि भाष्यकारों ने वर्णित किया है।

(२) स्वर्ग के सम्बन्ध में महर्षि की अवधारणा–

महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में स्वर्ग की परिभाषा देते हुए कहा है कि सुखविशेष स्वर्ग और दुःखविशेष भोग करना नरक कहलाता है। 'स्वः' सुख का नाम है। **'स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः'अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति'** जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है, वही विशेष स्वर्ग कहाता है। महर्षि के अनुसार आकाश के किसी स्थान विशेष में स्वर्गलोक

नामक कोई स्थान नहीं है। वे किसी काल्पनिक स्वर्गलोक की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। उनके अनुसार सुख–समृद्धि से परिपूर्ण जीवन ही स्वर्ग का जीवन है। सायणादि आचार्यों और मध्ययुगीन याज्ञिकों का यह विचार था कि अग्नि, वायु, इन्द्र आदि देवता वेदमंत्रों के द्वारा आहूत किए जाने पर न केवल हवियों का भक्षण करते थे अपितु प्रसन्न होकर यजमान की कामनाओं को पूर्ण करते थे और उसके मरने के बाद उसे स्वर्गलोक में भेज देते थे। ऐसा कोई स्वर्गलोक आजतक किसी को दिखाई नहीं दिया है। इस प्रकार स्वर्गलोक और उसके विपरीत नरकलोक की कल्पना पूर्णतः असत्य व भ्रामक है, जिसकी महर्षि ने कठोर शब्दों में निन्दा की है।

(३) यज्ञों का वास्तविक प्रयोजन –

महर्षि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेद–विषय–विचार नामक अध्याय के अन्तर्गत कहते हैं कि सुगन्ध आदियुक्त द्रव्य अग्नि में डाला जाता है, उसके अणु अलग–अलग होके आकाश में रहते ही हैं, क्योंकि किसी द्रव्य का वस्तुता से अभाव नहीं होता। इससे वह द्रव्य दुर्गन्धादि दोषों का निवारण करने वाला अवश्य होता है। फिर उससे वायु और वृष्टिजल की शुद्धि होने से जगत् का बड़ा उपकार और सुख अवश्य होता है। इस कारण से यज्ञ को करना चाहिए। पुनः इस शंका का निवारण करते हुए कि अतर और पुष्प आदि घरों में रखने से भी वायु और जल की शुद्धि की जा सकती है, महर्षि कहते हैं कि यह कार्य अन्य किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता है, क्योंकि अतर और पुष्पादि का सुगन्ध तो उसी दुर्गन्ध वायु में मिल के रहता है, उस को छेदन करके बाहर नहीं निकल सकता और न वह ऊपर चढ़ सकता है, क्योंकि उसमें हलकापन नहीं होता है। उसके उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता क्योंकि खाली जगह के बिना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता है। फिर सुगन्ध और दुर्गन्ध वायु के वहीं रहने से रोगनाशादि फल भी नहीं होते हैं। महर्षि ने वेद मंत्रों का भाष्य करते समय कई स्थलों पर यज्ञ करने के प्रयोजन का उल्लेख किया है। कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं–

1. **पर्यावरण की शुद्धि** –

❖ विद्वानों को ईश्वर की प्रार्थना सहित ऐसा अनुष्ठान करना चाहिए कि जिससे पूर्णविद्या वाले शूरवीर मनुष्य तथा वैसे ही गुणवाली स्त्री, सुख देनेहारे पशु, सभ्य मनुष्य, चाही हुई वर्षा, मीठे फलों से युक्त अन्न और ओषधि हों तथा कामना पूर्ण हो। (यजु0 भा0 २२.२२)

❖ जो मनुष्य आग में सुगन्धि आदि पदार्थों को होमें, वे जल आदि पदार्थों की शुद्धि करने हारे हो पुण्यात्मा होते हैं और जल की शुद्धि से ही सब पदार्थों की शुद्धि होती है, यह जानना चाहिए।
(यजु0 भा0 २२.२५)

❖ ऋगवेदादिभाष्यभूमिका के वेद–विषय–विचार अध्याय में महर्षि ने वर्णित किया है कि यज्ञ में जो भाप उठता है, वह भी वायु और वृष्टि के जल को निर्दोष और सुगन्धित करके सब जगत् को सुख करता है, इससे वह यज्ञ परोकार के लिए ही होता है। महर्षि ने इस सम्बन्ध मे कहा है– ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि (यज्ञोऽपि त0) अर्थात् जनता नाम जो मनुष्यों का समूह है, उसी के सुख के लिए यज्ञ होता है और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है, वह भी आनन्द को प्राप्त होता है, क्योंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उसको उतना ही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा। इसलिए अर्थवाद यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत् में आनन्द को बढ़ाता है। परन्तु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य होनी चाहिए। सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सबको उत्तम फल प्राप्त होता है, विशेष करके यज्ञकर्त्ता को, अन्यथा नहीं।

2. **अन्तःकरण की शुद्धि और सुख** –

❖ जो विद्वानों के सुख, पढ़ने, अन्तःकरण के विशेष ज्ञान तथा वाणी और पवन आदि पदार्थों की शुद्धि के लिए यज्ञक्रियाओं को करते हैं, वे सुखी होते हैं। (यजु0 भा0 २२.२०)

(४) यज्ञों में विनियोग –

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद के सातवें मण्डल तक और माध्यन्दिन शुक्ल यजुर्वेद संहिता के सम्पूर्ण मंत्रों का भाष्य किया। उससे पूर्व उवट, महीधर और सायण इस का भाष्य कर चुके थे। उवट और महीधर के भाष्य मुख्य रूप से कात्यायन–श्रौतसूत्र में विनियोजित कर्मकाण्ड का अनुसरण करते हैं और सायण के भाष्य भी इसी प्रकार से कर्मकाण्डीय परम्परा का अनुसरण करते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती का मत है कि पूर्वकृत विनियोग कोई अटल रेखा नहीं कि उसका अनुसरण करना अनिवार्य हो। सभी आचार्यों ने एक मंत्र का विनियोग एक प्रकार से ही नहीं किया है। उन्होंने एक मंत्र का अन्य प्रकार से भी विनियोग किया है। इससे यह प्रतीत होता हे कि मंत्र का पूर्वकृत विनियोगों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में पूवकृर्त विनियोगों के सम्बन्ध में कहा है कि जो युक्तिसिद्ध एवं वेदादि प्रमाणों के अनुकूल हो तथा जो मंत्रार्थ के अनुसार हो, वह विनियोग ग्राह्य हो सकता है। महर्षि ने स्वयं को पूवकृ त विनियोगों के बन्धन में नहीं बांधा और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ही कहा कि वेद केवल कर्मकाण्ड.नहीं है, ज्ञानकाण्ड, उपासनाकाण्ड और विज्ञानकाण्ड परक अर्थ भी किए जाने चाहिए। उनके भाष्य से वेद में अग्नि, वायु आदि वेदवर्णित देवताओं से अनेक देवों की पूजा की भ्रान्ति नहीं होती है। अन्य भाष्यकारों ने अग्नि, वायु आदि से परमेश्वर से भिन्न अभिमानी देवों का ग्रहण किया है, वहीं महर्षि ने उन्हें, एक परमेश्वर का गुणवाची माना है।

(५) यज्ञों में पशुवध का निरोध –

कर्मकाण्ड के अनुसार यजुर्वेद के प्रथम अध्याय से द्वितीय अध्याय के अठाईसवें मंत्र तक दर्शपूर्णमास यज्ञ है। महीधर की कर्मकाण्डपरक व्याख्या में षष्ठ अध्याय के मंत्र 7 से 22 तक अग्नीषोमीय पशु का प्रयोग आता है। इसमें छाग (बकरे) को देवताओं के लिए काटा जाता है। मंत्र 7 से 19 तक पशु को मारने आदि की विधि का वर्णन किया गया है। मंत्र 20 के अनुसार अध्वर्यु मृत पशु के सब अंगों को स्पर्श करके कहता है कि इस पशु के अंग–अंग में प्राण निहित किया और पशु को कहता है कि तुम जीवित होकर देवताओं के समीप जाओ। उसके बाद प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विज् पहले से ही पृथक् रखे हुए पशु के पिछले हिस्से को ग्यारह भागों में बांट कर, **"समुद्रं गच्छ स्वाहा"** आदि ग्यारह मंत्राशों से आहुति देते हैं। (मंत्र २१)। अन्त में सब यजमान और ऋत्विज् वरुण से प्रार्थना करते हैं कि वह उन्हें भय से मुक्त करें। (मंत्र २२) महर्षि दयानन्द ने उक्त मंत्र का अर्थ करते हुए कहा है कि यह उस अवसर का है जब बालक के माता–पिता विद्याध्ययानार्थ उसे गुरुकुल में प्रविष्ट कराने लाये हैं। आचार्य अपने इस नवागत शिष्य को सम्बोधित करके कहता है– हे शिष्य! मैं समस्त ऐश्वर्ययुक्त, वेदविद्या प्रकाश करने वाले परमेश्वर के उत्पन्न किये हुए इस जगत् में सूर्य और चन्द्रमा के गुणों से वा पृथिवी के हाथों के समान धारण और आकर्षण गुणों से प्रीति करते हुए तुझको जो ब्रह्मचर्य धर्म के अनुकूल जल और ओषधि हैं, उन जल और गोधूम आदि अन्नादि पदार्थों से नियुक्त करता हूँ। तुझे मेरे समीप रहने के लिए तेरी जननी अनुमोदित करे, सहोदर भाई अनुमोदित करे, मित्र अनुमोदित करे और तेरे सहवासी अनुमोदित करें। अग्नि और सोम के तेज और शांति गुणों में प्रीति करते हुए तुझको उन्हीं गुणों से ब्रह्मचर्य के नियम–पालन के लिए अभिषिक्त करता हूँ। बकरे के यज्ञ में बलि करने के सम्बन्ध में माता–पिता, भाई और मित्र अनुमोदित करें, यह सन्दर्भ के प्रतिकूल है और इससे सिद्ध होता है कि इस प्रसंग में यह अर्थ पूर्णतः वास्तविक अर्थ से भिन्न व प्रतिकूल है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि वेद में बलात पशु बलि सम्बन्धी प्रसंग डालने का प्रयास किया गया है। इसी प्रकार के प्रसंग अश्वमेध यज्ञ के सम्बन्ध में यजुर्वेद के 22वें से 25वें अध्याय में, पुरुषमेध यज्ञ के सम्बन्ध में पशुबलि परक अर्थ किए गए हैं। इसमें घोड़े की बलि तथा महिषी के साथ मृत घोडे. के सोने के अश्लीलता भरे प्रसंग हैं। कर्मकाण्डियों द्वारा यह माना जाता था कि घोड़ा पुनर्जीवित होकर स्वर्ग चला जाता है। महर्षि दयानन्द अश्वमेध के इस रूप से सहमत नहीं थे और न इसे वेद व शतपथ ब्राह्मण के अनुकूल समझते थे। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में राजप्रजाधर्म में लिखा है कि **'राष्ट्रपालनमेव क्षत्रियाणाम् अश्वमेधाख्यो यज्ञो भवति, नार्श्वं हत्वा तदङ्गानां होमकरणं चेति'** अर्थात् राष्ट्र का पालन करना ही क्षत्रियों का अश्वमेध

यज्ञ है, घोड़े को मारकर उसके अंगों को होम करना नहीं। यजुर्वेद के 30 व 31 वें अध्याय में भी पुरुषमेध यज्ञपरक वर्णन मिलते हैं। किसी समय इस यज्ञ में पुरुषों को यूपों में बांध कर बलि देने की प्रथा थी। महर्षि दयानन्द ने 30 वें अध्याय में आये पदों का उचित अर्थ करते हुए बताया कि इसमें राजा के कर्तव्य बताते हुए कहा गया है कि अमुक–अमुक गुणों वाले पुरुष या स्त्री को आप राष्ट्र में उत्पन्न कीजिए या नियुक्त कीजिए और अमुक–अमुक दुष्ट आचरण करने वाले पुरुष या स्त्री को आप दूर कर दीजिए। इसी प्रकार कर्मकाण्डानुसार यजुर्वेद के 35वें अध्याय में इन महीधर आदि भाष्यकारों ने पशु–बलि परक अर्थ किए हैं। यजुर्वेद का मंत्र 35.20 प्रस्तुत है–

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान् वेत्थ निहितान् पराके।
मेदसः कुलया उप तान्त्स्रवन्तु सत्या एषामाशिषः संनमन्तां स्वाहा।।

महीधर ने इस मंत्र का विनियोग चर्बी (वपा) का होम करना माना है। वे कहते हैं कि इस मंत्र से गाय की चर्बी का होम करें। वह मंत्र का अर्थ करते हुए कहते हैं– 'हे जातवेदः अग्ने! तू पितरों के लिए गाय की चर्बी को वहन कर ले जा, जहाँ कि दूर पर निहित उन्हें तू जानता है। चर्बी की नहरें पितरों के पास पहुंचें। दाताओं के मनोरथ भी पूर्ण हों। स्वाहा, सुहुत हो।' इस मंत्र का अर्थ करते हुए महर्षि ने 'वपा' का अर्थ चर्बी न मानते हुए भूमि किया है। उनके अनुसार यह शब्द 'वप' धातु से बना है। जिसमें बीज बोया जाए, वह वपा कहलाती है। इसी प्रकार '**मेदसः कुल्याः**' का अर्थ भी चर्बी की नहरें नहीं है अपितु 'स्निग्ध नहरें' हैं। महर्षि अर्थ करते हैं– 'ज्ञानी जनों को चाहिए कि वे जनक व विद्या–शिक्षा देने वाले श्रेष्ठ पितृजनों से खेती–योग्य भूमि को प्राप्त करें। उसकी सिंचाई आदि के लिए उन्हें जलप्रवाह से युक्त नदी व नहरें निकट प्राप्त हों, जिससे सत्य द्वारा उनकी यथार्थ इच्छाएं फलीभूत हों।

(६) यज्ञ का व्यापक अर्थ –

यज्ञ शब्द 'यज्' धतु से निष्पन्न होता है और उसके देवपूजा, संगतिकरण और दान ये तीन अर्थ होते हैं, जो इस शब्द में अन्तर्निहित हैं। तीनों शब्द बहुत अधिक व्यापक अर्थों और भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। महर्षि ने अपने समस्त ग्रन्थों और वेदभाष्य में इन शब्दों में अन्तर्निहित व्यापक अर्थों और भावों को यज्ञ के परिप्रेक्ष्य में वर्णित किया है। महर्षि ने केवल होम करने को ही यज्ञ नहीं माना है अपितु कहा है कि मनुष्यों को चाहिए कि संसार के उपकार के लिए जैसे विद्वान् लोग अग्निहोत्र यज्ञ का आचरण करते हैं, वैसे अनुष्ठान करें। (यजु0 १७.५५) महर्षि ने यज्ञ का पठन–पाठनरूप भी हमारे समक्ष रखा है। वे कहते हैं कि जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन–पाठन रूप यज्ञकर्म्म करने वाला मनुष्य है, वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा सन्तोष करने वाला होता है, इसलिए ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है। (यजु0 ७.२७)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पौराणिक कर्मकाण्डियों द्वारा स्थापित भ्रामक विचारधाराओं का न केवल खण्डन किया अपितु वेद के पदों का निरुक्तानुसार यौगिक अर्थ करते हुए सटीक अर्थ प्रस्तुत करते हुए, धरती से बाहर किसी स्वर्ग नाम के लोक की प्रचलित कल्पना का विरोध किया। मनुष्याकृति वाले देवताओं का यज्ञों में आकर हवि का भक्षण करने सम्बन्धी विचार उन्हें मान्य न था। अधिष्ठात्री देवताओं की सत्ता को उन्होंने स्वीकार नहीं किया। यज्ञों में जादू–टोने का भी उन्होंने घोर विरोध किया। उनसे पूर्व कर्मकाण्डियों द्वारा यज्ञ की एक सीमित परिभाषा होम के रूप में की जाती थी। महर्षि ने यज्ञ का वास्तविक प्रयोजन बताते हुए, एक व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की है। उपरोक्त समस्त तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि याज्ञिक विचारधारा को महर्षि ने एक अप्रतिम योगदान दिया है।

मनुष्य! यदि तू शांति का इच्छुक है तो तुझे **आर्षज्ञान** की महिमा समझनी होगी और आर्षज्ञान की महिमा समझने के लिए तुझे **दयानन्द** को भी समझना होगा।

– बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

समलैङ्गिकता पर विचार

– संत समीर

समलैङ्गिकता पर देश की सर्वोच्च अदालत ने जो फैसला दिया, वह वाकई में दिलचस्प है। दिलचस्प इस लिए भी कि सर्वोच्च अदालत ने अपने ही फैसले को पलट दिया। निश्चित ही यह समलैंगिकों के लिए किसी दिवाली के उल्लास से कम नहीं था। भारत जैसे पौराणिक व अंधधार्मिता वाले देश के लिए यह अत्यंत विचार का विषय है। लेकिन विचारक और सम्पादक संत समीर का इस मुद्दे पर क्या मत है, आइए देखते हैं––––––

पिछले माह देश की शीर्ष अदालत ने समलैङ्गिकता पर अपना बहुप्रतीक्षित फैसला दिया। फैसला सचमुच महत्त्वपूर्ण है और यह होना भी चाहिए था। मैं समझता हूँ कि समलैङ्गिकता जैसी स्थिति को हम पाप भले मानें, पर इसे अपराध नहीं माना जा सकता। दिक्कत यह है कि इस मुद्दे पर विरोधी और समर्थक, दोनों अपने–अपने ढङ्ग की अतिरञ्जनापूर्ण व्याख्याएँ करते रहे हैं। यह बात तो समझ में आती है कि समलैङ्गिकों को भी जीने की आजादी होनी चाहिए, पर इस आजादी की वकालत में समलैङ्गिकता को हर तरीके से जायज ठहराने वाले अनाप–शनाप वैज्ञानिक अध्ययन आसानी से हजम नहीं किए जा सकते। मैंने करीब दस साल पहले क्रॉनिकल ग्रुप की पत्रिका 'प्रथम प्रवक्ता' के लिए इस पूरे मसले पर एक लेख लिखा था। ढूँढ़–तलाश कर यहाँ चस्पा कर रहा हूँ। इसके शुरू के एक–दो अनुच्छेदों को आप आज के सन्दर्भों के हिसाब से कुछ बदल कर देख सकते हैं, पर बाकी को आज भी उसी रूप में पढ़ सकते हैं।)

अगस्त–2008 (प्रथम प्रवक्ता, पाक्षिक)

समलैङ्गिकता जिन्दाबाद

क्या आने वाले दिनों में भूख, गरीबी, भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे पीछे हो जाएँगे और देश के सामाजिक सङ्गठन समलैङ्गिक प्रेम की आजादी का आन्दोलन चलाते हुए दिखेंगे? सङ्केत जो मिल रहे हैं वे कुछ ऐसी ही कहानी कह रहे हैं। स्थितियाँ ऐसी बन रही हैं कि भारत में भी समलैङ्गिकों के समूह आजकल बल्लियों उछल रहे हैं। समाज के सबसे समझदार और स्पष्ट दृष्टिबोध की पहचान वाले लोग उन्हें खुलकर समर्थन देने लगे हैं, तो इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है? सामाजिक सङ्गठनों के सोशल फोरम जैसे महाआयोजनों में समलैङ्गिकता का मुद्दा अगर विशेष महत्त्व पाने लगे, तो इसका अर्थ यही निकलता है कि बेहतर दुनिया बनाने की चाह रखने वालों की प्राथमिकताएँ कुछ और दिशा ले रही हैं।

बहरहाल, समाजकर्म में लगे सारे ही लोग भले ही इस दिशा में न हों, पर जो तसवीर उभर रही है, वह चिन्ताजनक है। जिस देश में आबादी का एक बड़ा हिस्सा आज भी दो जून की रोटी का ठीक से इन्तजाम न कर पाता होय जिस देश के लाखों बच्चों की जिन्दगी कूड़ा बीनने और फुटपाथों पर ठिठुरते हुए रात गुजारने को अभी भी अभिशप्त होय जिस देश की स्त्रियाँ ढेर सारी वर्जनाओं में खुद को आज भी जकड़ा हुआ महसूस करती होंय जिस देश के जवान सपने बेरोजगारी के अँधेरे में गुम हो जाने की नियति से ग्रस्त होंय उस देश में सामाजिक सरोकारों का दम भरने वाले लोग समलैङ्गिकता के आजाद व्यवहार के छूट की माँग को अपनी प्राथमिकताओं के शीर्ष पर रखने लगें, तो यह दुःखद ही है। इसे बुनियादी सरोकारों को दरकिनार कर सिर्फ मौज–मस्ती के लिए एक विकृत उच्छृङ्खल स्वार्थवृत्ति प्रेरित स्वच्छन्द भोग की बेलगाम लालसा के अलावा और क्या कहा जा सकता है?

इस सूचना पर आप हँसें या तरस खाएँ, पर यह सच है कि साल भर पहले ही प्रशान्त भूषण, कैप्टन लक्ष्मी सहगल, एम. जे. अकबर, सतीश गुजराल, श्याम बेनेगल, कुलदीप नैयर, आशीष नन्दी, शुभा मुद्‌गल, अरुन्धति राय, सुमित सरकार, बी. जी. वर्गीज, अरुणा राय और दिलीप पडगाँवकर जैसे लोग समलैङ्गिक

आन्दोलन के पक्ष में खड़े हो चुके हैं। अमर्त्य सेन जैसे व्यक्ति ने तो यहाँ तक कह दिया कि–'समलैङ्गिक आचरण की स्वतन्त्रता है या नहीं, इससे तय होता है कि मानव सभ्यता का कितना विकास हुआ है।' सभ्यता के विकास के इस अजब–गजब पैमाने पर क्या कहा जाए? इसे एक भले दिमाग का बुरा इस्तेमाल न कहें तो क्या कहें?

इधर समलैङ्गिक समूह अपना एक अलग तर्कशास्त्र और जीवनदर्शन विकसित करने में लगे हैं। इसके लिए पत्रिकाएँ और वेबसाइटें तक चल रही हैं। कुछ वैज्ञानिक अध्ययन इस दिशा में उनके लिए खासे मददगार साबित हो रहे हैं। बात–बात में वैज्ञानिक अध्ययनों का हवाला देने वाले समझदार किस्म के लोगों के लिए भी यह कायल करने वाली बात है ही। ब्रूस बागेमील, जोआन रफगार्डन, पॉल वाज जैसे वैज्ञानिकों के अध्ययनों का निष्कर्ष है कि मनुष्य की बात हो या मनुष्येतर प्राणियों की, नर–मादा का प्रेम स्वाभाविक नहीं है। मसलन, पक्षियों को छोड़कर अभी तक नर और मादा के बीच भावनात्मक सम्बन्धों के प्रमाण नहीं मिले हैं। या कहें यदा–कदा ही मिले हैं। वहीं दूसरी ओर, प्रकृति में नरों में आपस में और मादाओं में आपसी गहरे भावनात्मक सम्बन्धों के प्रमाण बहुत बड़ी सङ्ख्या में हैं। यह भी कि स्तनधारियों में नर और मादा का समागम केवल प्रजनन के लिए होता है और उतना ही होता है जितना कि प्रजनन के लिए जरूरी हो। यह समागम आनन्द और प्रेम के लिए हरगिज नहीं होता। यानी मनुष्यों में नर व मादा यदि प्रजनन की जरूरत से ज्यादा सम्बन्ध रख रहे हैं तो यह प्रकृति की व्यवस्था के खिलाफ है। कुछ वैज्ञानिक अध्ययनों का निष्कर्ष यह भी है कि चिम्पाजी की प्रजाति बोनोबोस, जिर्राफ, पेङ्ग्विन, पैरेट, बीटल, व्हेल समेत डेढ़ हजार से ज्यादा प्रजातियों में होमो सैक्सुअलिटी के गुण पाए जाते हैं। नार्वे की राजधानी के 'द ओस्लो नैचुरल हिस्ट्री म्यूजियम' में तो पिछले दिनों बाकायदा इसकी एक प्रदर्शनी भी लगाई गई। यह जानना भी दिलचस्प होगा कि लगभग 23 सौ साल पहले ग्रीक दार्शनिक अरस्तू ने हाईनस नामक जीव में होमो सैक्सुअलिटी की बात कही थी। इसके अलावा भी कुछ लोग समलैङ्गिकता को आनुवंशिक विशेषता के तौर पर जब–तब प्रचारित करते ही रहते हैं।

अब, अगर ये अध्ययन और निष्कर्ष सचमुच प्रकृति में कायम जीवन–व्यवहार की सही व्याख्या करते हैं तो हमारे जैसे लोग इन्हें कब तक नकार पाएँगे? दुनिया के दरो–दीवार की खुलती हुई खिड़कियों से एक–न–एक दिन सच की रोशनी आ ही सकती है। असल में हमारी दिलचस्पी सचमुच के किसी वैज्ञानिक निष्कर्ष को नकारने की नहीं, बल्कि यह देखने की है कि क्या ये अध्ययन वैज्ञानिक ही हैं या विज्ञान के नाम पर इनमें किसी छद्म का इस्तेमाल हुआ है। अगर समलैङ्गिकता के झण्डाबरदार इन वैज्ञानिक अध्ययनों को अपने पक्ष में अकाट्य प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत करते हुए यह कहना चाहते हैं कि स्त्री और पुरुष का समागम सिर्फ सन्तति के लिए है और यह आनन्द और प्रेम के लिए हरगिज नहीं है तो फिर उन्हें इस प्रत्यक्ष अनुभूति का भी जवाब देना होगा कि स्त्री–पुरुष समागम में आनन्दातिरेक और प्रेम की अभिव्यक्ति होती क्यों है? कोई लाख चाहे पर समागम के दौर के आनन्दातिरेक से विमुख नहीं रह सकता। समागम में आनन्द प्राप्ति जैसी कोई बात न होती तो आदमी कामान्ध होकर बलात्कार जैसी बेजाँ हरकतें भी क्यों करता? सहज अनुभूतियाँ जीवन–व्यवहार की सही व्याख्या करती हैं या खींच–तान कर कुछ निहित उद्देश्यों को लेकर निकाले जा रहे तथाकथित वैज्ञानिक अध्ययन? यदि यौन और प्रेम सम्बन्ध पुरुष का पुरुष या स्त्री का स्त्री के साथ ही स्वाभाविक और प्राकृतिक होता तो प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को एक–दूसरे का पूरक क्यों बना दिया? प्रकृति ने क्यों नहीं समलिङ्गी सम्बन्धों में ही सन्तति की सम्भावना भी बना दी? आखिर सृष्टि को चलाए रखने के लिए नर–मादा की पारस्परिक जरूरत क्यों?

प्राकृतिक और सहज प्रवाह को बनावटी बन्दिशों से कभी भी एक हद से ज्यादा नहीं रोका जा सकता। काम का आवेग इतना सहज है कि ब्रह्मचर्य की महत्ता पर उपदेशों–प्रवचनों के अम्बार के बाद भी कभी बृहत्तर समाज ब्रह्मचर्य का साधक नहीं बना। ब्रह्मचर्य का चोला पहने लोगों में भी गिने–चुने ही होंगे जो सचमुच काम भाव को काबू में रख पाए हों। फिर,

समलैङ्गिकता ही ज्यादा स्वाभाविक है तो समलैङ्गिकों की सङ्ख्या भी क्यों उँगलियों पर गिनने लायक ही रही?

समलैङ्गिकता के समर्थक यदि यह तर्क प्रस्तुत कर रहे हैं कि प्रकृति में डेढ़ हजार से ज्यादा प्रजातियों में समलैङ्गिक व्यवहार पाया जाता है तो सवाल यह भी उठता है कि बाकी की लाखों प्रजातियों में क्यों नहीं समलैङ्गिकता पाई जाती? यह भी कि मनुष्य को भी इन लाखों में ही क्यों न शामिल माना जाए? और यदि हजार–दो–हजार या दस हजार प्रजातियों में भी समलैङ्गिक व्यवहार पाया जाए तो क्या सिर्फ इस आधार पर ही मनुष्य को भी इस राह पर चल पड़ना चाहिए? आखिर जो लाखों प्रजातियाँ समलैङ्गिक व्यवहार नहीं करतीं, उन जैसा व्यवहार आदमी क्यों न करे? अधिसङ्ख्य का व्यवहार ही मनुष्य का प्रेरक क्यों न हो? बात यह भी है कि जिन्हें हम विभिन्न प्रजातियों में समलैङ्गिक व्यवहार के रूप में देख रहे हैं, हो सकता है कल को वे कुछ और साबित हों। ऐसा इसलिए भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस तरह के अध्ययनों की प्रवृत्ति बाद में अकसर गलत साबित होने की रही ही है। हमने देखा ही है कि किस तरह विज्ञान के ही नाम पर डिब्बाबन्द दूध को माँ के दूध से बेहतर प्रचारित किया गया और जब स्पष्ट दुष्परिणाम दिखे तो निष्कर्ष उलट दिए गए। कहा यह भी गया कि च्युङ्गम चबाने से याददाश्त बढ़ती है। इससे च्युङ्गम बनाने वाली कम्पनियों की चाँदी हो गई। जबकि, सच यह है कि याददाश्त का सम्बन्ध च्युङ्गम से नहीं, चबाने की क्रिया से है। इसी तरह प्रसिध्द मेडिकल मैगजीन 'लांसेट' ने एक अध्ययन रिपोर्ट छापी कि होम्योपैथी दवाओं का असर सिर्फ मनोवैज्ञानिक होता है और यह अवैज्ञानिक चिकित्सा पध्दति है। पत्रिका ने इस बात का उत्तर देने की जरूरत नहीं समझी कि अबोध शिशुओं पर होम्योपैथी दवाओं का क्यों एलोपैथी से भी बेहतर असर दिखता है? या कि जानवरों पर होम्योपैथी दवाओं का कौन–सा मनोवैज्ञानिक असर होता है? असल में एलोपैथी के तौर–तरीके को ही मात्र विज्ञानसम्मत मानने के दुराग्रह के नाते यह मूर्खतापूर्ण अध्ययन सामने आया।

सिर्फ विज्ञान का मुलम्मा चढ़ा देने भर से कोई अध्ययन वैज्ञानिकतापूर्ण नहीं हो जाता। ऐसा होता तो प्रायः एक शोध को सिरे से खारिज कर देने वाले आए–दिन दूसरे शोध सामने न आते। पशु–पक्षियों के व्यवहार में समलैङ्गिकता तलाशना तो और भी सन्देहास्पद है, क्योंकि इतनी प्रगति के बाद भी हम मनुष्येतर प्राणियों की भाषा, भावना और व्यवहार पर कोई अन्तिम निर्णय देने की स्थिति में नहीं पहुँच सके हैं। यह सोचने वाली बात है कि पञ्जाब और हिमाचल के लायंस सफारी 'छतबीड़ जू' तथा 'रेणुका' में कुछ रोगों के कारण नस्ल खत्म करने के उद्देश्य से जब नर और मादा शेरों को अलग–अलग रखा गया तो देखने में यही आया कि ज्यादा समय तक मादा से दूर रहने पर नर शेर गुस्से में खुद को जख्मी करने लगे, पर कामावेग की शान्ति के लिए उन्होंने आपस में किसी तरह का समलैङ्गिक व्यवहार नहीं किया। पशु–पक्षियों का कोई व्यवहार ऊपरी तौर पर मनुष्य के जैसा दिखने भर से उसे मनुष्य के समकक्ष घोषित कर देना अज्ञान का परिचायक हो सकता है किसी वैज्ञानिक दृष्टि का नहीं। वैज्ञानिक अध्ययनों के आधार पर एक तर्क यह दिया जाता है कि समलैङ्गिकता के लक्षण जन्मजात होते हैं, इसलिए यह प्राकृतिक है। इस तर्क पर यही कहा जा सकता है कि कई तरह की बीमारियाँ और शारीरिक विकृतियाँ भी जन्मजात होती हैं, तो क्या उन्हें भी प्राकृतिक मान लिया जाय?

वास्तव में यह सब विकृत शरीर सुख की आजादी को जायज ठहराने के तर्कजाल से ज्यादा और कुछ नहीं है। किसी क्रिया के प्रकृति के अनुकूल या प्रतिकूल होने का सबसे बड़ा पैमाना तो यह है कि यदि कोई क्रिया प्रकृति के अनुकूल है तो उससे प्रकृति की गति में कोई विक्षोभ नहीं पैदा होता, उसकी गति सुचारु बनी रहती है। इस अर्थ में दुनिया के सारे लोग दयावान, करुणावान, ईमानदार और एक–दूसरे के सहयोगी भाव वाले हो जाएँ तो संसार की गति में बाधा नहीं पड़ेगी, बल्कि दुनिया और भी रहने के काबिल बन जाएगी। अब यदि सारे लोग बेईमान, भ्रष्ट, एक–दूसरे को बात–बात में धोखा देने वाले हो जाएँ, तो कल्पना कीजिए कि कितने क्षण

जीवन–व्यवहार चल सकेगा? कुछ ऐसे ही, यदि सारे लोग समलैङ्गिकता को सहज व्यवहार मानकर अपना लें, तो हम समझ सकते हैं कि मनुष्य जाति के नष्ट होने में ज्यादा समय नहीं लगेगा।

सच तो यह है कि इस सहज सिध्द अप्राकृतिक प्रवृत्ति पर यदि बहस–मुबाहिसे की जरूरत पड़े तो समझ लेना चाहिए कि यह बीमार समाज की निशानी है। मानवेतर जीवन से लेकर किसी भी स्तर पर इसे अप्राकृतिक और अनुचित सिध्द कियाजा सकता है। पशु–पक्षियों से लेकर मनुष्य तक में नर–मादा की एक–दूसरे के लिए पूरक होने की अनिवार्यता से ही यह सहज समझ आ जानी चाहिए कि समलैङ्गिकता नितान्त अप्राकृतिक है और अनुचित है। पशु–पक्षियों में विवेक न होने के बावजूद यह सहज समझ है। यदि आदमी में यह समझ गड़बड़ाने लगी है तो निश्चित रूप से उसका मानस बीमार हो रहा है। इस मायने में पश्चिम का समाज ज्यादा बीमार है। समलैङ्गिकता स्वस्थ और जीवन्त समाज की निशानी नहीं हो सकती। यह तो उद्देश्यहीन, भटके हुए और मुर्दा हो रहे समाज की ही पहचान है। पश्चिम की दशा यही है। उस समाज में जो जुम्बिश दिखाई दे रही है, वह जीवन्तता की कम, मौत के पहले की फड़कन ज्यादा हैं। दरअसल विज्ञान की कोख से जन्मी टेक्नॉलोजी उनके हाथ लग गई है। इसके सहारे नित नई उपभोग की विधियाँ तलाशने को ही वे अपना साध्य मान बैठे हैं। संयम का अर्थ और उसकी उपादेयता उन्हें नहीं मालूम। आदमी के होने का अर्थ भी उन्हें नहीं मालूम। जिस समाज के लोगों के लिए अपने होने का अर्थबोध सिर्फ इतने तक सिमट गया हो कि वे सिर्फ इसलिए पैदा हुए हैं कि नित नई चीजों का ज्यादा से ज्यादा उपभोग कर सकें तो उस समाज की निरन्तर छीजती जीवन्तता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है! वास्तव में कामुकता भोगवाद की सबसे प्रबल दैहिक अभिव्यक्ति है। और इसी नाते, समलैङ्गिकता जैसी काम–विकृतियाँ उन्हीं भोगवादी समाजों की ईजाद हैं। टेक्नॉलोजी की महारत ने, यह जरूर है कि उनमें उनके जीवन्त होने का भ्रम पैदा कर रखा है। लेकिन किसी भी विलासी समाज का इस तरह का भ्रम ज्यादा दिनों तक कायम नहीं रह सकता। इतिहास में तमाम पन्ने ऐसे मिलेंगे, जिनमें विलासी समाजों के पतन की महागाथाएँ मिल जाएँगी।

समझदार किस्म के लोग अगर यह तर्क दे रहे हैं कि समलैङ्गिकता तो भारतीय संस्कृति में बहुत पहले से ही रही है, तो उनकी इतिहास और संस्कृति की समझ पर तरस ही खाया जा सकता है। दुनिया के भोगवादी समाजों की देन समलैङ्गिकता की समस्या को उन्हीं के नजरिये से देखने पर इस तरह का दृष्टिदोष तो होगा ही। समाजकर्म का आधुनिक संस्करण दरअसल पश्चिम के ही चित्त–मानस से गहरे तक प्रभावित हो चुका है–सम्भवतः इसलिए भी कि एनजीओ संस्कृति में धन का प्रवाह वहीं से ज्यादा हो रहा है–अन्यथा, समझदारों के लिए यह समझना बहुत मुश्किल नहीं है कि समलैङ्गिकता का मतलब सिर्फ एक विकृत शरीर सुख की माँग है और भारतीयता सिर्फ शरीर सुख नहीं है। भारतीयता की विशेषता अपने मूल रूप में मौजूद हो तो इससे शून्य जैसे आविष्कार निकलते हैं जिससे दुनिया में विज्ञान का सफर आसान हो जाता हैय जबकि, पश्चिम का शरीर–सुख सिफलिस और एड्स जैसे रोग देता है जो तमाम उपलब्धियों पर भी ग्रहण लगाने का काम करते हैं। ऐसे में, यह सोचना पड़ेगा कि क्या भारतीय संस्कृति–सभ्यता को हम अप्रासङ्गिक मान चुके है और शरीर–सुख को ही केन्द्रीय तत्त्व मानकर चलने वाला पश्चिमी समाज हमारा आदर्श और लक्ष्य बन गया है? और क्या सामाजिक सङ्गठनों को अब बेहतर दुनिया का रास्ता कुछ इसी तरफ से खुलता दिखाई दे रहा है?

हालाँकि यह सब कहते–समझते हुए भी यह तो माना ही जा सकता है कि समलैङ्गिकता एक स्थिति है और समाज के किसी हिस्से का यथार्थ भी है। समलैङ्गिक अगर किसी को नुकसान नहीं पहुँचाते तो सिर्फ इस व्यवहार की वजह से वे नफरत के पात्र भी नहीं बन जाते। समलैङ्गिकता अतृप्तता की स्थितियों में तनावों से जन्मी एक बीमार मानसिकता हो सकती है और इसके लिए प्रताड़ना और नफरत के बजाय सहानुभूति और इलाज की व्यवस्था की जरूरत है। हमारा संविधान अगर इसे अपराध मानता है तो इस पर उसे पुनर्विचार करने की जरूरत है। हो सकता है

हमारे समाज में समलैङ्गिकता को पाप समझा जाए, पर इसे अपराध किसी भी हाल में नहीं माना जाना चाहिए। पाप और अपराध में बुनियादी फर्क है। नैतिक होना और कानूनसम्मत होना भी एक ही नहीं है। हर पाप जरूरी नहीं कि अपराध हो और हर अपराध जरूरी नहीं कि पाप हो। समलैङ्गिक लोग अगर समाज को नुकसान नहीं पहुँचाते तो उन्हें अपराधी भी नहीं माना जा सकता।

प्रेरक प्रसंग

मोक्ष नहीं, मानवता ही सर्वहित है लक्ष्य

आज वह बहुत बेचैन दिख रहे थे। कमरे में इधर उधर घूमते हुए कुछ सोच रहे थे। शायद देश, समाज, धर्म और इंसानियत की खराब हालात कोलेकर बेचैनी थी। तभी किसी ने दरवाजा खटखटाया। महर्षि ने दरवाजा खोलते हुए पूछा–बताइए, कैसे आना हुआ? वह व्यक्ति अधीर होते हुए बोला–स्वामीजी, आप इस तरह कभी बेचैन नहीं हुए। कठिन–से कठिन और मुसीबत में भी कभी आप को बेचैन या घबराते हुए नहीं देखा–सुना। आज क्या कारण है कि आप इतने बेचैन हैं?'' महर्षि दयानंद बोले,–मैं गंगा के किनारे एक माता को अत्यंत गरीबी की हालात में अपने मृत दुधमुहे बेटे को गंगा में प्रवाहित करते वक्त उसकी दशा देखकर परेशान हूं। आज हमारे देश की यह हालात हो गई है कि किसी माँ को अपनी धोती को फाड़कर उसे कफन के रूप में बच्चे के अंतिम संस्कार के लिए प्रयोग करती है फिर वही टुकड़ा लेकर अपनी धोती में सिल लेती है। इतनी बदहाली है उस भारत देश की जिसे विश्व गुरु और सोने की चिड़िया कहा जाता था। मैं बेचैन हूं, भारत की गुलामी के कारण देश–समाज के अत्यंत नाजुक हालात को देखकर। आगंतुक कुछ देर महर्षि को देखता रहा। वह समझ गया उसके प्रिय स्वामी अपनी हालत से या दुख से दुखी नहीं हैं बल्कि देश–समाज और धर्म के बदतर हालात के कारण व्यथित हैं।

महर्षि दयानंद ने देश–समाज और धर्म की बदहाली को देखा, सुना और भोगा था। उन्होंने धर्म, जाति और कल्याण के नाम पर होने वाले पाखंड़ों, जुल्मों, शोषण और क्रूरता को जाना–समझा था। इस लिए वह ऐसा रास्ता बनाना चाहते थे जो लोगों को दुख–दर्द, शोषण,जुल्म,क्रूरता और पाखंड से बाहर निकाल सके। वे धर्म, अध्यात्म और वेद के नाम पर होने वाले अनर्थों को बहुत गहराई और सूक्ष्मता के साथ समझा था। इसलिए उन्होंने तय किया, वह घर बार छोड़कर सच्चे शिव की खोज में निकले हैं। उस शिव को तो साधना के द्वारा उन्होंने खोज लिया है। योग–ध्यान से उसे हासिल कर लिया है, लेकिन समाज, धर्म, देश और वैदिक संस्कृति की ऐसी हालात को सुधारना खुद के स्वर्ग या मोक्ष से कहीं हजार गुना अधिक जरूरी है।

महर्षि दयानंद मानव को मौलिकता, उत्तमता और नवीनता की ओर चलने की प्रेरणा देते हैं। लेकिन साथ में यह भी कहते हैं कि पुरानी बातों और विचारों को इस लिए नहीं छोड़ या पकड़े रहना चाहिए की वे पुराने हैं। पुराने और नये का समन्वय करने के तरीका सबसे पहले दयानंद ने ही बताए। उन्होंने वेद को प्रमाण मानने के पीछे भी जो तर्क दिए वे भी ज्ञान–विज्ञान के मुताबिक खरे उतरते हैं।

भव्य वैदिक उत्सव, ऋषि मेला एवं आर्य लेखक सम्मेलन

आर्य लेखक परिषद् के तत्वावधान एवं जिला प्रतिनिधि सभा, प्रयाग (उ.प्र.) के सहयोग से

वैदिक दर्शन, साहित्य, संस्कृति एवं धर्म प्रचार शिविर, प्रयाग (कुम्भ मेला 2019)

विषय : स्मारिका प्रकाशन के लिए लेखकों और विज्ञापन दाताओं से अपील

सम्माननीय विज्ञजन,

जैसा की आप सभी जानते हैं प्रयाग में भारतीय संस्कृति, साहित्य और धर्म का संवाहक कुम्भ की बहुत लम्बी परम्परा रही है। कहा जाता है, प्रयाग और अन्य स्थानों पर लगने वाले कुम्भों की परम्परा मानव संस्कृति के साथ प्रारम्भ हुई थी। विश्व में कहीं पर, किसी भी अवसर पर लगने वाले मेलों में सबसे बड़ा मेला प्रयाग का कुम्भ मेला है जिसमें करोडों लोग बिना किसी आमंत्रण या बुलावे के पहुँचते हैं। विश्व के अनेक आश्चर्यों में यह भी एक आश्चर्य है। महर्षि दयानंद प्रयाग में तीन बार पधारे और अखण्ड संवेदना एवं विश्व प्रेरणा का स्वर्णिम इतिहास लिख गए। प्रयाग के प्रसिद्ध नागवासुकी मन्दिर पर महर्षि ने माघ की विकट रातें गुजारी थीं जिसे देखकर अंग्रेज अधिकारी ने दांतों तले अंगुली दबा ली थी। इसी क्रम में महर्षि ने जुलाई 1874 ई. में लगभग तीन माह रहकर विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना का शुभारम्भ भी यहीं किया था।

विशेष यज्ञ भूमि होने के कारण इसका नाम 'प्रयाग' पड़ा। यह भूमि गंगा व यमुना नदी और पौराणिक विद्या की देवी कही जाने वाली सरस्वती का संगम होने के कारण प्रसिद्ध है। ज्ञान और सरस्वती की धारा वैसे तो यहाँ हमेशा प्रवाहित होती रहती है लेकिन कुम्भ मेले के विशेष अवसर पर यह धारा ज्ञान की धारा के रूप में पावन बनकर जन–जन को तृप्त करती रही है। वहीं पर पौराणिक मान्यताओं के महंत भी अपना प्रचार–प्रसार करते हैं। 2019 में लगने वाले अर्द्ध कुम्भ के अवसर पर ज्ञान, दर्शन और धर्म प्रचार की धारा प्रवाहित करने का निर्णय जहाँ प्रयाग की आर्य समाजों की ओर से लिया गया है वहीं पर आर्य लेखकों, पत्रकारों और विद्वानों की संस्था 'आर्य लेखक परिषद्' ने मिलकर नव जागरण शिविर लगाकर ज्ञान रूपी सरस्वती की धारा को प्रवाहित करने निर्णय लिया है। 13 जनवरी 2019 से 4 मार्च 2019 तक यह मेला चलेगा। यह अवसर साहित्य वितरण, वेदोपदेश और धर्म प्रचार शिविर के द्वारा समाज सुधार और वैदिक धर्म प्रचार के रूप में सभी आर्य महानुभावों के लिए 'विशेष' बन सकता है। अतः अर्द्धकुम्भ में अपनी आहुति देने के लिए सभी आर्यजन सादर आमंत्रित हैं। शिविर में भोजन और आवास की व्यवस्था पूर्णतः निःशुल्क है, परन्तु सहुलियत के लिए पूर्व पंजीकरण कराना अच्छा रहेगा। यदि प्रचार–प्रसार के लिए आर्यजन किसी तरह सहयोग देना चाहते हैं तो उनका सहर्ष स्वगत है। ज्ञातव्य है, यह विश्व मेला है। करोड़ों लोग मेले में आते हैं, अतः सभी आर्य महानुभावों का भी दायित्व बनता है कि वैदिक धर्म और वैदिक ज्ञान गंगा के प्रचार–प्रचार के लिए अपना तन, मन और धन समर्पित करें जिससे वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार का हमारा मूल उद्देश्य पूरा हो सके।

स्मारिका प्रकाशन के ज्ञान–विज्ञान यज्ञ में यज्ञकर्ता बने

ज्ञान, धर्म, विद्या और आर्ष विचार धारा को 'कुम्भ ज्ञान–विज्ञान यज्ञ स्मारिका' के माध्यम से सुरक्षित करने का संकल्प लिया गया है। जिसमें चारों तत्त्वों (ज्ञान, धर्म, वेद–विद्या व दर्शन) सम्बंधी लेखों का समावेश के अतिरिक्त आर्यसमाजों, आर्य शिक्षण संस्थाओं/संस्थानों का सूक्ष्म परिचय सम्मिलित किया जाएगा। इसके अतिरिक्त आर्य महानुभाव अपनी अपनी संस्था, संस्थान, संगठन, फर्म और निजी तौर पर शुभकामनाएँ व उत्पाद के विज्ञापन के रूप में भी देकर हमें सहयोग कर सकते हैं।सभी प्रकार की सामग्री नवम्बर के अंत तक मेरे पते या अणुडाक पते (ई–मेल) के माध्यम से **भेंज** सकते हैं। लेख (रचना) कृतिदेव 10 या देवनागरी फांट में भी बर्ल्ड फाइल में टंकित कराकर ही भेंजे।

संयोजक/सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
ए–11,त्यागी विहार,
नांगलोई,दिल्ली–110041
वायुदूत : 8178710334/9868235056

प्रबंधक/व्यवस्थापक
आर्य राजेन्द्र(कपूर)
पत्र व्यवहार : आर्यसमाज मुण्डेरा बाजार,
प्रयाग(इलाहाबाद)–211011
राजेन्द्र कपूर, चलभाष : 09889482489

जहाँ करोड़ों बच्चे भूखे व कुपोषित हों वहाँ पत्थर की निर्जीव मूर्तियों को दुग्ध–स्नान करवाना आस्था नहीं अमानवीयता है

- सीताराम गुप्ता
ए.डी.–106–सी, पीतमपुरा, दिल्ली
चलभाष नं. 09555622323

समाचार पत्र पढ़ते हुए श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर विभिन्न मंदिरों में राधा–कृष्ण की सुसज्जित नयनाभिराम मूर्तियों का दुग्धस्नान करवाते पुजारियों व श्रद्धालुओं के कई बड़े–बड़े व आकर्षक चित्र दिखलाई पड़े। एक चित्र में तो विग्रहों का दुग्ध से अभिषेक करते पुजारियों के हाथों में विशाल आकार के स्वर्णाभ कलश थे जिनमें से दूध झरनों की तरह बह रहा था। दो पुजारी अलग–अलग कलशों से एक साथ ये क्रिया सम्पन्न कर रहे थे। कलशों के आकार से पता चलता था कि उनमें बीस–बीस लीटर दूध तो अवश्य ही रहा होगा। घड़े भी शुद्ध स्वर्ण से निर्मित हों तो बड़ी बात नहीं। चित्र से ये तो स्पष्ट नहीं हो सकता कि ये क्रिया दिन में एक ही बार की गई या बार–बार दोहराई गई लेकिन कार्यक्रम की भव्यता में कोई कसर नहीं दिख रही थी। इसे हम अपनी भक्ति–भावना की पराकाष्ठा कह सकते हैं।

हम दुग्ध ही नहीं, दधि, घृत, मधु व अन्य अनेकानेक सुगंधित पदार्थों द्वारा भी विभिन्न भगवानों की मूर्तियों का स्नान अथवा अभिषेक करते हैं। करें भी क्यों ना? भारत कभी सोने की चिड़िया कहलाता था। दूध–घी की तो यहाँ नदियाँ बहती थीं। आज देश की नदियों में दूध–घी तो क्या पानी भी शुद्ध नहीं रहा। गंदे नालों में परिवर्तित हो गई हैं हमारी पवित्र नदियाँ व अन्य जल–स्रोत। आज दूध–घी की नदियाँ नहीं बहतीं तो क्या प्रदूषित नदियाँ व अन्य जल–स्रोतों के शुद्धिकरण के लिए तो दूध–घी या फल–फूलों की कमी नहीं। प्रदूषित नदियों व अन्य जल–स्रोतों के शुद्धिकरण के लिए उनकी पूजा–पाठ करके उनमें टनों फल–फूल, पूजा–सामग्री डालने व दुग्ध बहाने में आज भी हम पीछे नहीं हैं। ये भी हमारी भक्ति–भावना की पराकाष्ठा ही तो है। कई बार नहीं प्रायः सोचता हूँ कि हमारी कॉमनसेंस को क्या हो गया है?

धर्म–आध्यात्मिकता का अपना महत्त्व है लेकिन उसके लिए आडंबर ज़्यादा किया जा रहा है धर्म–आध्यात्मिकता का विकास कम हो रहा है। धर्म–आध्यात्मिकता अपनी जगह ठीक है लेकिन धर्म–आध्यात्मिकता के नाम पर जिस अव्यावहारिकता व अवैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया जा रहा है, सहजबुद्धि की उपेक्षा की जा रही है क्या वह हमारी बौद्धिकता पर प्रश्नचिह्न नहीं है? क्या ये हमारे असंतुलित विकास का संकेत नहीं है? क्या पर्यावरण प्रदूषण की समस्या पर अच्छा निबंध लिख लेना या पर्यावरण प्रदूषण के कारणों और उपायों पर चर्चा कर लेना अथवा विभिन्न धर्म–ग्रंथों को रट लेना व उनकी मनमानी व्याख्या करना ही समस्याओं के समाधान के लिए काफी है?

एक समस्या तो ये है कि हमारे यहाँ भगवान बहुत अधिक संख्या में हैं और सभी को तर माल पसंद है। दूध–घी, मक्खन–मिस्री, फल–मेवे ही सबको भाते हैं अतः भगवान की मूर्तियों पर दूध चढ़ाना स्वाभाविक है। वैसे किस भगवान को क्या पसंद है इस जानकारी का सोर्स क्या है? सोर्स क्या है? ये तो नहीं पता पर भगवान को क्या–क्या पसंद है सभी जानते हैं। किस भगवान को क्या–क्या पसंद है किसने बताया? उसकी पूजा–पाठ करने वालों ने बताया होगा? उन्हें किसने बताया? हमारे ग्रंथों में लिखा है? ग्रंथ किसने बनाए? भगवान ने बनाए और लिख दिया कि मेरी पूजा इस तरह करना और ब्रेक फ़ास्ट और डिनर का मेन्यू साथ में अटैच कर दिया। अरे भगवान जी सबको खाने को तुम्हीं देते हो तो ख़ुद की व्यवस्था भी क्यों नहीं कर ली? दूसरों को भी मोहताज रखते हो और ख़ुद भी मोहताज रहते हो। अजब तेरी लीला न्यारी। आज दुग्ध–स्नान की माँग कर रहे हो कल कहोगे कि यहीं ब्यूटी पार्लर भी बनवा के दो। एक ठो जिम भी चाहिए।

एक कहानी याद आ रही है। एक आदमी कपड़ा लेकर पतलून सिलवाने के लिए दर्जी के पास गया। दर्जी ने आदमी का नाप लिया और कहा कि कपड़ा कम है इस कपड़े में पतलून नहीं बनेगी। आदमी पास के दूसरे दर्जी के पास चला गया। दूसरे दर्जी ने आदमी का नाप लिया और कहा कि पतलून बन जाएगी। चार दिन बाद आकर पतलून ले जाना। चार दिन बाद वो आदमी अपनी पतलून लेने दर्जी के यहाँ गया तो देखा कि दर्जी के लड़के ने भी उसी कपड़े से बनी हुई निक्कर पहन रखी है। उस आदमी ने पतलून बनाने वाले दर्जी से तो कुछ नहीं कहा पर पहले वाले दर्जी जिसने पतलून सीने से मना कर दिया था के पास गया और कहा, '' अरे भई तुम तो कह रहे थे कपड़ा कम है पतलून नहीं बनेगी। तेरे पड़ौसी टेलर ने तो मेरी पतलून के साथ–साथ अपने लड़के की निक्कर भी उसी कपड़े में से बना ली।'' दर्जी ने कहा, ''मेरा लड़का बड़ा है उसकी निक्कर नहीं निकल रही थी।''

तो भगवान जी को जो ये भोग लगता है वो भगवान जी की पसंद नहीं दर्जी यानी पूजा–पाठ करने वालों की आवश्यकता व पसंद के अनुसार लगता है। दर्जी के लड़के की निक्कर निकल आए तो ठीक नहीं तो कपड़ा वापस। पूजा–पाठ करने वालों की पसंद के पकवान हों तो ठीक और उसकी पसंद के नहीं तो भगवान को कैसे पसंद हो सकते हैं? उनका भोग कैसे लगाया जा सकता है? और तर माल व मेवा–मिष्ठान्न किसे पसंद नहीं? समय के अनुसार रुचियाँ बदल जाती हैं। पूजा–पाठ करने वालों की रुचियाँ भी बदल सकती हैं। भविष्य में ऐसे मंदिर बन जाएँ जहाँ केवल पास्ता या पिज़्ज़े से ही भगवान का भोग लगे ये भी असंभव नहीं। धर्म–अध्यात्म के नाम पर आडंबरों में न तो कमी आई है और हमने अपना दृष्टिकोण व्यावहारिक नहीं बनाया तो आडंबरों में कमी आने की संभावना भी कम है। वैसे कुछ लोगों के निहित स्वार्थ और बाज़ारवाद इसमें कभी सुधार नहीं होने देंगे। मंदिरों में मूर्तियों का भोग लगाने के लिए मंदिरों के आसपास प्रसाद के रूप में जैसी मिठाइयाँ व दूसरे पदार्थ बिकते हैं वो निहायत घटिया क़िस्म के होते हैं। अंधश्रद्धा के कारण लोग उनका उपभोग करने को विवश होते हैं।

वैष्णो देवी जाने वाले श्रद्धालु प्रसाद के रूप में वहाँ से मुख्य रूप से अखरोट और मुरमुरे व चीनी से बना इलायचीदाना लाते हैं। उसमें बेर के आकार के कुछ जंगली फल व किसी फल की कटी हुई सूखी हुई फाँकें भी होती हैं। प्रसाद के रूप में लाए जाने वाले अखरोट प्रायः बहुत ही घटिया क़िस्म के होते हैं। एक तो उनको तोड़ना ही मुश्किल होता है और किसी तरह तोड़ भी दिया जाए तो वो या तो खाली निकलते हैं और थोड़ी बहुत गिरी हो भी तो उसको निकालने में ही नानी की नानी याद आ जाती हैं। कई लोग प्रसाद को बड़ी श्रद्धा से देखते हैं और किसी भी सूरत में फेंकते नहीं हैं। ऐसे लोग प्रसाद के अखरोटों से गिरी निकालने के लिए पहले तो हाथ–पैर चलाते हैं लेकिन जब हाथ–पैरों से बात नहीं बनती तो औज़ारों का सहारा लेते हैं। हथौड़ी, प्लायर्स, पेचकश, चाकू व घर में उपलब्ध अन्य सभी औज़ार आज़माए जाते हैं। अखरोट रूपी ग्लोब पर या तो उसके ध्रुवों पर चोट मारते हैं या फिर उसकी भूमध्य रेखा पर।

अब चोट कहीं भी मारें अखरोट को चोट कम मारें तो टूटता नहीं और हथौड़ी ज़रा ज़ोर से लग जाए तो बेचारे का कचूमर निकल आता है और उसमें जो थोड़ा बहुत मग़ज़ होता है वो अखरोट के छिलकों के चूरे के साथ चिपक कर बेगाना हो जाता है। ये बात नहीं कि हर अखरोट ऐसा ही निकलता है। कभी–कभी एक आध अखरोट में गिरी निकल भी आती है लेकिन टूटे हुए अखरोट के टुकड़ों में से उसको निकालने के लिए पेचकश या चाकू की ज़रूरत पड़ती है। अब ये काम रोज़–रोज़ तो करना नहीं होता इसलिए अनुभव की कमी के कारण कभी उँगलियाँ घायल हो जाती हैं तो कभी चाकू का ही राम नाम सत्य हो जाता है। कहते हैं न कि प्रसाद कोई पेट भरने के लिए थोड़े ही होता है प्रसाद के तो दो दाने ही बहुत। तो हम प्रसादवत दो दाने निकाल कर ही दम लेते हैं। कभी कभार ये दो दाने कड़वे निकल आते हैं तो कुछ लोग तो फ़ौरन थूक देते हैं लेकिन यहीं पर परीक्षा होती है असली और नकली भक्तों व श्रद्धालुओं की।

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम । (ऋग ८.२.१८) – यज्ञकर्ता को देवगण भी चाहते हैं।

जो नकली श्रद्धालु होते हैं वही प्रसाद को थूकते हैं असली श्रद्धालु नहीं। अरे साथ में मुरमुरा और मीठा इलायचीदाना किस लिए होता है? वैसे तो किसी अखरोट में गिरी निकलेगी नहीं लेकिन यदि आप सच्चे श्रद्धालु हैं और इस कारण से किसी अखरोट में गिरी निकल आए और वो कड़वी निकल आए तो उसको मीठे इलायचीदाने के साथ नीचे उतार लीजिए। चलो अखरोट और मुरमुरे व मीठे इलायचीदाने का प्रसाद तो ले लिया लेकिन अब उस बचे हुए बेर के आकार के जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी हुई फाँकों का क्या करें? अरे भाई बड़े बेसब्रे लगते हो! क्या अखरोट और मुरमुरे व मीठे इलायचीदाने के प्रसाद से पेट नहीं भरा? अब बस भी करो! जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी हुई फाँकों को सँभालकर रख दीजिए फिर काम आ जाएँगी। कुछ असहिष्णु लोग जंगली फलों व फल की कटी हुई सूखी फाँकों को अखरोटों के मलबे के साथ ही फेंक देते हैं तो कुछ लोग सँभालकर रख देते हैं और ये उनकी भक्ति–भावना की पराकाष्ठा ही है जिसके कारण जब तक उन पर फ़ंगस नहीं लगता किसी भी सूरत में फेंकते नहीं।

अब पुनः मूल समस्या पर आते हैं। क्या मूर्तियों पर दूध चढ़ाना अनिवार्य है? क्या ये दूध की बर्बादी नहीं? लोग प्रायः कहते हैं कि भगवान आपके दूध के भूखे नहीं। ये तो आस्था की बात है। भगवान तो आपकी भावना देखते हैं। हाँ ये हुई न काम की बात। भगवान तो भाव के भूखे हैं। उन्हें फल–फूल, दूध–दही अथवा मेवे–मिष्ठान्न की ज़रूरत नहीं। फिर फल–फूल, दूध–दही अथवा मेवे–मिष्ठान्न की ज़रूरत किसको है? किसको है ये भी पता चल गया होगा। भगवान को फल–फूल, दूध–दही अथवा मेवे–मिष्ठान्न की ज़रूरत नहीं। वो तो भाव के भूखे हैं तो फिर हम अपने भावों को ठीक करने की बजाय आडंबर को बढ़ावा क्यों देते हैं? क्यों नहीं सादगी से मन व विचारों की शुद्धि का प्रयास करते? आस्था की ही बात है तो उसे चढ़ावे की रिश्वत से क्यों अपवित्र करते हैं?

बड़े–बड़े शहरों व महानगरों के भव्य मंदिरों में ही नहीं हर गाँव–गोठ व गली–मोहल्ले के मंदिरों में आडम्बर और चढ़ावे का सिलसिला बदस्तूर जारी ही नहीं इसमें वृद्धि हो रही है। जिस देश में करोड़ों बच्चों को एक बूँद तक दूध की मयस्सर नहीं वहाँ मूर्तियों पर बेहिसाब दूध चढ़ाया जाना जो नालियों के गंदे पानी में मिलकर और गंदगी बढ़ाता है, किसी भी तरह से उचित नहीं। मैं नहीं समझता कि कोई भगवान ऐसा निर्दयी भी हो सकता है जो करोड़ों बच्चों की भूख की उपेक्षा करके ख़ुद दूध पी जाए। प्रश्न उठता है कि हम वास्तव में कॉमनसेंस से विहीन हैं अथवा किसी अन्य लाभ के लिए ऐसा दिखने का प्रयास करते हैं?

कुछ साल पहले की बात है। एक बीस–बाईस साल की लड़की मेड के रूप में काम करने के लिए आई। दुबली–पतली बीमार–सी। कई बीमारियाँ एक साथ। सबसे बड़ी बीमारी कुपोषण। पहले तो उसका इलाज करवाया। महीनों तक दवाएँ दीं। अच्छा खाना दिया। रोज़ शाम को दूध भी दिया। एक दिन दादी ने पूछा, "बेटा क्या तुम्हारे गाँव में भी दूध का स्वाद ऐसा ही होता है या कुछ अलग होता है?" लड़की ने शर्मिंदा होते हुए कहा, "दादी पता नहीं। मैंने तो ज़िंदगी में पहली बार दूध पीया है।" ऐसे में करोड़ो भूखे बच्चों और बड़ों की अस्थियों के ऊपर छद्म आस्था के महल निर्मित करना भक्ति अथवा आध्यात्मिकता नहीं, आत्म–प्रवंचना है, आडंबर है। ढोंग ही नहीं एक बहुत बड़ा अपराध है। जीवन की वास्तविकता को जितना जल्दी समझ जाएँ अच्छा होगा।

हमें वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहन देने के लिए और यह सिद्ध करने में कि मूर्तिपूजा वेद सम्मत नही है, स्वामी दयानन्द के महान उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। आर्यों के प्रवर्तक वर्तमान जातिभेद की मूर्खता और उसकी हानियों के विरुद्ध अपने अनुयायियों को तैयार करने के अतिरिक्त और कुछ भी न करते तो भी वे वर्तमान भारत के बड़े नेता के रूप में अवश्य सम्मान पा जाते।

– डॉ विण्टरनीज जर्मन विद्वान

परिषद्—समाचार

अक्टूबर 2018 में आर्य लेखक परिषद द्वारा संगोष्ठियों का आयोजन किया गया। प्रथम संगोष्ठी हजरतगंज लखनऊ स्थित प्रेस क्लब परिसर में 17 अक्टूबर को सम्पन्न हुई। दूसरी संगोष्ठी अन्तरराष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन परिसर में पं. लेखराम हॉल संख्या 16 में 25 व 26 अक्टूबर को सम्पन्न हुई। दोनों संगोष्ठियों में क्या कुछ हुआ, प्रस्तुत समाचार में विस्तार से पढ़िए और अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराएं।

—अखिलेश आर्येन्दु

आर्य लेखक परिषद् द्वारा आयोजित संगोष्ठी (लखनऊ)

प्रिन्ट व इलेक्ट्रानिक्स मीडिया ने संगोष्ठी को महत्वपूर्ण बताया

लखनऊ 18 अक्टूबर! आर्य लेखक परिषद् लखनऊ के तत्वावधान में आर्य लेखक—पत्रकार संगोष्ठी का आयोजन हजरतगंज स्थित प्रेस क्लब लखनऊ के सभागार में 17 अक्टूबर 2018 को किया गया। संगोष्ठी के प्रारम्भ में संगोष्ठी के सह संयोजक प्रत्यूष रत्न पाण्डेय ने अतिथि विद्वानों, लेखकों और आगंतुकों का स्वागत किया। संगोष्ठी का प्रारम्भ सामूहिक राष्ट्रगान के द्वारा किया गया। सभी कलमकारों और आगंतुकों का स्वागत करते हुए श्री पाण्डेय ने कहा,—आज आर्य लेखक परिषद् लखनऊ ने जिस संगोष्ठी का आयोजन किया है उसका पूरा श्रेय निश्चित ही वेद मनीषी डॉ. रूप चन्द्र 'दीपक' जी को जाता है। उन्होंने कहा, आज की संगोष्ठी में पधारे परिषद् के अध्यक्ष और सचिव का लखनऊ के इस प्रेस क्लब परिसर में स्वागत और अभिनन्दन करना एक आनन्द का क्षण है।

संगोष्ठी में उद्बोधन देते हुए परिषद् के राष्ट्रीय सचिव अखिलेश आर्येन्दु ने कहा,— आज देश—समाज में कई तरह की समस्याएं और चुनौतियां हैं। इनसे पार पाने के लिए सशक्त लेखनी की आवश्यकता है। भूमण्डलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण के बाद देश एक गम्भीर आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक गुलामी के दलदल में फँसता जा रहा है। बाजार—तंत्र हावी हो गया है और स्वदेशी का मंत्र गायब कर दिया गया है। आर्य लेखक परिषद् इस त्रासदी को बाखूबी समझता है। अन्य लेखकों और पत्रकारों को भी समझने की आवश्यकता है। वेद के ज्ञान की जगह पौराणिकता और पाखण्ड से समाज दिग्भ्रमित हो गया है। इसके लिए वेद पथ और महर्षि दयानन्द का दिखाया रास्ता ही सबसे अधिक कारगर हो सकता है। क्रान्तिकारी और प्रेरक उद्बोधन देते हुए परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष आचार्य वेदप्रिय शास्त्री ने कहा,—आर्य लेखक परिषद् की स्थापना महर्षि दयानन्द की अधूरी क्रान्ति को पूरी करने के उद्देश्य से 1991 में वरिष्ठ आर्य लेखकों—पत्रकारों के कर कमलों के द्वारा की गई थी। हमारा उद्देश्य है, लेखनी के माध्यम से समाज को सही दिशा देना और वेद के रास्ते पर चलने के लिए जन—जन को प्रेरित करना। जब तक वेद और दयानन्द की प्रतिष्ठा विश्व में नहीं होगी तब तक विश्व में समस्याओं का लगा अम्बार समाप्त नहीं हो सकता है। हम नए लेखनी के धनी लेखकों—कवियों—पत्रकारों के माध्यम से समाज को सही और नई दिशा देने के लिए कृत संकल्पवान् हैं। जागरूक और सहयोग देने वाले महानुभावों का सहयोग हमारे लक्ष्य को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। संगोष्ठी के संयोजक और आर्य लेखक परिषद् उत्तर प्रदेश के प्रभारी डॉ. रूप चन्द्र 'दीपक' ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा,— आर्य लेखक परिषद् को समझने का अवसर मुझे लगातार मिल रहा है। मुझे लगता है, इसके द्वारा कुछ अच्छे समाज सुधार की दिशा में परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। लेखक—पत्रकार समाज की धड़कन को बाखूबी पकड़कर समाज में सकारात्मकता के वातावरण में बृद्धि कर सकते हैं। लखनऊ राजधानी होने के कारण उत्तर प्रदेश के आर्य लेखकों का बड़ा अधिवेशन या प्रशिक्षण के कार्य यहाँ किए जा सकते हैं। संगोष्ठी में श्री प्रबोध कुमार आर्य, आनन्द चौधरी, सन्तोष कुमार के अतिरिक्त अनेक पत्रकार—लेखक और मीडियाकर्मी उपस्थित थे। राष्ट्रगान और शान्तिपाठ के साथ संगोष्ठी सम्पन्न हो गई।

आर्य लेखक परिषद् द्वारा आयोजित संगोष्ठी (अक्टूबर, 2018)

वेद को आधार बनाकर दयानन्द की अधूरी क्रान्ति को पूरी करने और वेद ध्वजवाहक बनने की चुनौती!

25 और 26 अक्टूबर, 2018 को आर्य लेखक परिषद् द्वारा संगोष्ठी का आयोजन अन्तरराष्ट्रीय आर्य महासम्मेलन, दिल्ली परिसर में पं. लेखराम हॉल संख्या 16 में भव्यता के साथ किया गया। संगोष्ठी में 12 से अधिक प्रदेशों से पधारे आर्य लेखकों–कवियों–पत्रकारों ने भाग लिया।

संगोष्ठी का आधार विषय–**वेद और महर्षि दयानन्द की प्रतिष्ठा विश्व में कैसे हो?** रखा गया था। विषय संयोजन परिषद् सचिव साहित्यकार व चिंतक पं. अखिलेश आर्येन्दु ने किया। उद्घाटन सत्र का प्रारम्भ 3.30 बजे हुआ जो सायं 5 बजे तक चला। सर्व प्रथम संस्था सचिव ने संस्था के कार्य, उद्देश्य और गतिविधियों के सम्बंध में विस्तार से चर्चा करते हुए परिषद् के माध्यम से किए जा रहे कार्यों की जानकारी दी। उन्होंने कहा, आर्य लेखक परिषद् ही मात्र एक ऐसी कलमकारों की संस्था है जो कलम, व्याख्यान और कार्य शालाओं के माध्यम से समाज में जागृति लाने और लोगों को वैदिक धर्म व संस्कृति की विशेषताओं को बताकर उन्हें आत्मसात कराने का कार्य करती है। प्रथम सत्र के प्रारम्भ में वरिष्ठ कवि श्री भारत भूषण आर्य ने महर्षि दयानंद और राष्ट्रवाद की ओजस्वी कविताओं को सुनाकर लोगों को सोचने के लिए बाध्य कर दिया। फिर उड़ीसा से पधारे शोधार्थी व लेखक श्री विजय प्रसाद उपाध्याय ने अपने लेखन और कार्यों की विस्तार से चर्चा की। श्री उपाध्याय ने कहा,– वेद में अनेक प्रकार के विज्ञानों का वर्णन आया है जिसमें विमान विद्या विज्ञान भी एक है। वेद की विमान विद्या को वेदों से शोधकर ही सर्वप्रथम महाराष्ट्र निवासी शिवकर बापूजी तलपदे ने विमान बनाया था, लेकिन अंग्रेजी राज्य सर्वत्र होने के कारण उसका श्रेय उन्हें न देकर एक अंग्रेज को दिया गया, जो न तो अनुसंधानक था और न तो किसी विषय का विशेषज्ञ ही। महाराष्ट्र से पधारे बातौर मुख्य अतिथि डॉ. नयन कुमार आचार्य ने अपने गम्भीर और प्रेरक उद्बोधन में कहा,– वेद और महर्षि दयानन्द पर आधारित यह सत्र निश्चित ही महत्वपूर्ण है।

आचार्य ने कहा,–आर्यसमाज की स्थापना ही वेद को प्रतिष्ठा और उसे जन–जन तक पहुँचाने के उद्देश्य से महर्षि ने की थी। आज जिस तरह का विश्व का वातावरण है उसमें वेद ज्ञान कहीं अधिक उपयोगी, प्रासंगिक और कल्याणकारी बन गए हैं। परिषद् वेद और महर्षि दयानन्द को प्रतिष्ठा देने के लिए कृत संकल्पवान है। हम सभी को चाहिए कि वैदिक विचार धारा को आगे बढ़ाते हुए स्वयं आगे बढ़ें। विश्व प्रसिद्ध वेद विदुषी आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा ने अपने ओजस्वी, प्रेरक और शोधपरक उद्बोधन में कहा,– वेद और महर्षि दयानन्द दोनों पर्यायवाची जैसे हैं। दयानन्द का नाम आते ही वेद अपने आप आ जाते हैं। महर्षि का सारा जीवन वेदों के लिए समर्पित था। वेदों और महर्षि दयानन्द की प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक आर्य का जीवन वेद के अनुकूल हो। वैदिक आदर्श जीवनशैली अपने आप में एक प्रेरणा है। हमें सच्चे अर्थों में आर्य बनना चाहिए। परिषद् के अध्यक्ष और महान वैदिक विद्वान् आचार्य वेद प्रिय शास्त्री ने अपने व्याख्यान में वेद को जानने और मानने तथा महर्षि दयानन्द को जानने और मानने पर विशेष बल दिया। समाज में वेदों के प्रति सद्भावना तो है लेकिन वेद में क्या है और प्रत्येक व्यक्ति के लिए वेद किस प्रकार कल्याणकारी और प्रगतिगामी हैं, इसको लोग नहीं जानते। आर्य लेखक परिषद् वेद को जनवाने और मनवाने के लिए कार्य कर रहा है। यह संगोष्ठी उसी का हिस्सा है। लखनऊ से पधारे प्रसिद्ध वेद मनीषी और चिंतक आचार्य (डॉ) रूप चन्द्र 'दीपक' ने अपने प्रेरणाप्रद उद्बोधन में कहा,– वेद सृष्टि के ऐसे ज्ञानमय, विज्ञानमय और प्रेरणाप्रद ग्रन्थ हैं जो सम्पूर्ण मानव जाति के लिए हमेशा कल्याणकारी रहे हैं। ये सब सद्ग्रन्थों के आधार हैं। मानव वेदों से कितना, क्या और कब ग्रहण करता है उसी रूप में उसकी उन्नति होती जाती है। इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे वैदिक विद्वान् आचार्य रामज्ञानी आर्य (देवरिया, उ.प्र.) ने आर्य लेखक परिषद् के इस आयोजन के लिए साधुवाद

दिया। उन्होंने वेद और महर्षि दयानन्द के प्रति समर्पित होने के परिषद् के उद्देश्य को सराहा और अपना हर प्रकार से सहयोग देने का आश्वासन दिया।

द्वितीय सत्र सायं 5 बजे से प्रारम्भ हुआ। इस सत्र का विषय था–**आर्य लेखक, लेखन और युगीन परिस्थितियाँ** । विषय संयोजन और सत्र का संचालन पं. अखिलेश आर्येन्दु ने किया। इस सत्र में वक्ताओं ने आर्य लेखक, लेखन और युगीन परिस्थितियों पर विस्तार से प्रकाश डाला। संगोष्ठी में अपने विचार रखते हुए साहित्यकार और परिषद् के उपमन्त्री डॉ. हरीसिंह पाल ने कहा– आर्य लेखक वह है जो निर्भीक, निष्पक्ष और समाज के प्रति अतिशय संवेदनशील हो। उसके लेखन में सर्वहित और ज्ञान–प्रेरणा की बात होनी चाहिए। वह जो लिखे उसी के अनुरूप उसका जीवन भी हो। महाराष्ट्र से पधारे लेखक और गवेषक डॉ. महेन्द्र गोशाल ने अपना विज्ञान परक शोध पत्र प्रस्तुत किया और महाराष्ट्र में किसानों द्वारा हो रही हत्याओं को सामाजिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत किया। आचार्य वेदप्रिय शास्त्री ने इस सत्र को नया आयाम देते हुए कहा,– आज का आर्य लेखक और लेखन दोनों भटके हुए हैं। आज के लेखकों में न तो चिन्तन, ओज और आकर्षण है और न तो युगीन परिस्थितियों को वह समझ पा रहा है। वैदिक उपदेशक महाविद्यालय लखनऊ के संस्थापक और लेखक डॉ. रूप चन्द्र 'दीपक' ने अपने क्रान्तिकारी उद्बोधन में कहा,– आर्य लेखक की अपनी अलग धारा हुआ करती है। उसमें मौलिकता, नवीनता और सर्वहित समाहित होना चाहिए। लेखन ऐसा होना चाहिए कि पाठक में एक जिज्ञासा का भाव पढ़ते समय आदि से अन्त तक बना रहे। उबाऊ, नीरस और सतही लेखन आर्य लेखन कदापि नहीं हो सकता है। इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे 'आर्य ज्योति' पत्रिका के यशस्वी सम्पादक, गुरुकुलों और आर्यसमाजों के संस्थापक बंगलौर निवासी श्री एस.पी. कुमार ने अपने सारगर्भित उद्बोधन में कहा,– आर्य लेखक परिषद् का यह आयोजन हमारे लिए ही नहीं बल्कि अनेक आर्यजनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। दक्षिण भारत में इसके विस्तार के लिए वह कार्य करेंगे और संगोष्ठियों का आयोजन कराने में पहल करेंगे। आर्य लेखकों और उनके लेखन पर चर्चा करते हुए डॉ. कुमार ने कहा,– निश्चित ही यह सोचने का और करने का विषय होना चाहिए कि आर्य लेखक और लेखन की अलग पहचान कैसे हो। आर्यसमाजों को भी इस दिशा में आगे आना चाहिए। बिना युगीन और ओजस्वी लेखन के समाज पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस लिए आर्य लेखक को समाज के प्रति अपने गुरुतर दायित्वों को भी समझना चाहिए।

तृतीय सत्र '**आर्य लेखक परिषद् का विस्तार और इसकी आर्थिक संवृद्धि के उपाय**' पर आधारित था। इस सत्र की अध्यक्षता पंडिता सूर्या देवी चतुर्वेदा' ने किया। वक्ताओं में आचार्य राम स्वरूप रक्षक (अजमेर) डॉ. नयन कुमार आचार्य और आचार्य वेदप्रिय शास्त्री थे। सभी ने परिषद् के विस्तार और इसकी आर्थिक संवृद्धि पर अपने चिन्तन परक विचार व्यक्त किए। यह सत्र सायं 7 बजे से 7.30 तक चला। आज के सत्रों में श्री संजय सत्यार्थी (पटना, बिहार), श्रीमती उत्तरा नरुर्कर (कर्नाटक), श्री सतीश आर्य (दिल्ली), श्री प्रांशु आर्य (कोटा), श्री राजेन्द्र आर्य (कोटा), श्री गोपाल कृष्ण (कोटा), श्री अशोक गोयल (रेवली,हरि.), पं. उमा शंकर शास्त्री (बेगूसराय–बिहार), श्री विवेक आहूजा (पंचकुला) की विशेष उपस्थिति रही।

26 अक्टूबर,2018। आज संगोष्ठी का द्वितीय दिवस था। प्रातः 9.30 से 1.30 बजे तक चलने वाली संगोष्ठी में कुल तीन सत्र हुए। जिसमें प्रथम सत्र का विषय था–**बढ़ते पाखंड, समाज सुधार और आर्य लेखन की दशा–दिशा।** इस सत्र का विषय संयोजन और संचालन आ. अखिलेश आर्येन्दु ने किया। सत्र का प्रारम्भ कवि श्री गुप्तेश्वर गुप्त (झारखंड) की कविताओं के द्वारा किया गया। सत्र को आगे बढ़ाते हुए इस सत्र की अध्यक्षता के लिए सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर के अध्यक्ष डॉ. अशोक आर्य का नाम प्रस्तावित किया गया जिसका अनुमोदन उपस्थित सभी विद्वानों ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में डॉ. रूप चन्द्र 'दीपक' और आचार्य राम स्वरूप रक्षक थे। इस सत्र में विशेष रूप से उत्तरा नरुर्कर का उद्बोधन था। अपना विवेचनात्मक व्याख्यान देते हुए श्रीमती नरुर्कर ने अद्यतन सामाजिक विसंगतियों और आर्य लेखन पर विवेचना प्रस्तुत किया। जिसमें उन्होंने कई विन्दुओं को स्पर्श किया। आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा ने समाज में फैले अंधविश्वासों को एक–एक करके उसके प्रभावों और उनसे बचने की प्रेरणा दी। वैज्ञानिक तरीके से

प्रत्येक अंधविश्वास पर उन्होंने अपना विवेचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया। भूत–प्रेत, जादू–टोना, गंड–ताबीज और मूर्तिपूजा जैसे अनेक अंधविश्वासों पर चर्चाएं कीं। इसके अतिरिक्त डॉ. रूप चन्द्र 'दीपक', डॉ. कृष्णकान्त वैदिक, आचार्य राम स्वरूप रक्षक ने ओजस्वी उद्बोधन दिए। अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए डॉ. अशोक आर्य ने कहा,– समाज एक तरफ आर्थिक संवृद्धि की ओर बढ़ रहा है वहीं पर दूसरी ओर नए–नए पाखंडों और अंधविश्वासों में भी फँसता जा रहा है। प्रभावशाली लेखन इसमें कारगर भूमिका निभा सकता है। प्रेरणाप्रद किस्से, कहानियों के द्वारा भी समाज सुधार किया जा सकता है। प्रेमचन्द्र का उदाहरण हमारे सामने है। इस सत्र में आचार्य वेद प्रिय शास्त्री, आ. रामस्वरूप रक्षक की उपस्थिति विशेष रही।

द्वितीय सत्र नागरी लिपि, भारतीय भाषाओं का स्वभाव और युगीन लेखन के किन्तु–परन्तु रखा गया जिसे विशेष कारणों से तृतीय सत्र में सम्मिलित कर लिया गया।

द्वितीय और तृतीय सत्र का विषय– **वेद, आधुनिक विज्ञान और आधुनिक मानव की सभ्यता संस्कृति पर एक दृष्टि।** प्रातः **11.30 से** प्रारम्भ होने वाले इस सत्र का विषय संयोजन वैदिक विद्वान् डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में जहाँ श्रीमती उत्तरा नरुर्कर, डॉ. दीपक, श्री बजरंग मुनि थे वहीं पर वक्ता के रूप में आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा, चिन्तक श्री सन्त समीर और आचार्य वेदप्रिय शास्त्री थे। सत्र की अध्यक्षता उड़िया भाषा के महान लेखक और वैदिक विद्वान् राज्य के मुख्य अभियन्ता रहे आचार्य प्रियव्रत दास ने की। वेद, आधुनिक विज्ञान और मानव की सभ्यता संस्कृति पर आधारित इस विशेष सत्र में वेद और आधुनिक विज्ञान पर वक्ताओं ने अपने गम्भीर विवेचनात्मक ज्ञान–विद्या को सहज शैली में प्रस्तुत किया। श्री सन्त समीर ने मानव की सभ्यता संस्कृति विषय पर अपने गम्भीर चिन्तन से उपस्थित जनसमूह को मन्त्र मुग्ध कर दिया। उन्होंने कहा,– आर्यसमाज भी रूढ़िवाद और पाखंड की ओर बढ़ रहा है। यह एक चिन्ता का विषय है। आर्यसमाज के द्वारा एक बड़े आन्दोलन की आवश्यकता है। परम्पराओं के नाम पर जिस शोषण, कर्मकाण्ड का आर्यसमाज ने कभी विरोध किया था वही आज उनमें फँसता दिखाई दे रहा है, इस पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। अध्यक्षीय उद्बोधन देते हुए श्री प्रियव्रत दास ने कहा– आर्य लेखक परिषद् ने वेद विषय पर संगोष्ठी का आयोजन करके एक उत्तम कार्य किया है। वेद को महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में सबसे अधिक महत्व दिया। आज भी विश्व स्तर पर वेदों को समझने की कोशिशें हो रहीं हैं। वेद को जन–जन तक पहुँचाने के लिए सबको मिलकर प्रयास करने होंगे। आधुनिक विज्ञान को समझना होगा। अन्त में कुछ पुस्तकों का विमोचन किया गया जिसमें स्व. महापंडित गंगा प्रसाद उपाध्याय कृत पुस्तकों का चार भागों में प्रकाशित संग्रह **गंगा ज्ञान सागर** जिसका सम्पादन डॉ. वेदपाल जी ने किया था का विमोचन डॉ. राजेन्द्र जिज्ञासु और डॉ.वेदपाल जी ने मिलकर किया। डॉ. अजय आर्य(रायपुर) कृत 'गुरुदेव' पुस्तक और स्व. सतीश चन्द्र तलवार कृत 'ओंकारनाम' पुस्तक का विमोचन भी उपस्थित विद्वानों द्वारा किया गया। उपमन्त्री श्री सतीश आर्य की नई प्रकाशित पुस्तक 'एन इन्ट्रोडक्शन टू कमेन्ट्री ऑन वेदाज़' के बारे में लेखक ने संक्षिप्त समीक्षा प्रस्तुत की।

अन्तिम सत्र में जिन प्रमुख विद्वानों और समाजकर्मियों की भागीदारी रही उसमें प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु (पंजाब) आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय (दिल्ली) चर्चित लेखक श्री तेजपाल सिंह धामा, श्री अजय कुमार (गो.हासा. के मालिक) लोकस्वराज मंच के संस्थापक श्री बजरंग मुनि (सरगुजा,छत्तीसगढ़) आचार्य रामज्ञानी आर्य, आर्य ज्योति के सम्पादक श्री एस.पी. कुमार (बंगलौर) डॉ. रूप चन्द्र 'दीपक' श्री राजेन्द्र कपूर (प्रयाग,उ.प्र.) श्री जगदीश सिंह एडोकेट (प्रयाग) स्वामी सत्य प्रकाश (मिर्जापुर,उ.प्र.) श्री विवेक आहूजा (पंजाब) प्रमुख थे। दोनों दिन सैकड़ों लोगों ने गोष्ठी में उपस्थित होकर लाभ उठाया।

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति–प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे।

आर्य लेखक परिषद् के संस्थापक स्वर्गीय डॉ॰रामकृष्ण आर्य जी की पुण्यतिथि कोटा में मनाई गयी। प्रसिद्ध साहित्यकार पण्डित शिवनारायण जी उपाध्याय एवं विद्वान वेदप्रिय शास्त्री जी ।

आर्य लेखक परिषद का महान संकल्प

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

आइए, संकल्प करें - दुनिया को फिर आर्य (श्रेष्ठ) बनाएंगे

हे देह विश्व आत्मा है भारत माता
सृष्टि प्रलय पर्यन्त अगर यह नाता